सामाजिक समरसता

एवं

रैदास का काव्य

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ के हिन्दी विभाग में
मास्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि
हेतु प्रस्तुत

लघु शोध–प्रबन्ध

BABASAHEB BHIMRAO AMBEDKAR UNIVERSITY
LUCKNOW
प्रज्ञा शील करुणा
ESTABLISHED 1996

शोध–निर्देशक
डॉ0 सर्वेश कुमार सिंह
(सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष)
हिन्दी विभाग

शोधार्थी
रॉक्सी
पंजीयन क्रमांक – 998/19
हिन्दी विभाग

हिन्दी विभाग
भाषा एवं साहित्य विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ–226025
2020

माता–पिता

एवं

शिक्षकगण को समर्पित

घोषणा–पत्र

मैं **रॉक्सी** यह घोषणा करती हूँ कि **"सामाजिक समरसता एवं रैदास का काव्य"** प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध मेरे द्वारा संग्रहित तथ्यों पर आधारित है तथा मास्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत यह लघु शोध–प्रबंध मेरा मौलिक कार्य है। इसे अंशतः या पूर्णतः इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य संस्थान में किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह शोध कार्य मैंने **डॉ0 सर्वेश कुमार सिंह,** सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के निर्देशन व मार्गदर्शन में पूरा किया है।

मैं घोषणा करती हूँ कि इस शोध कार्य को पूरा करने में मैंने विश्वविद्यालय के शोध संबंधित सभी नियमों का पालन किया है। मैं यह भी घोषणा करती हूँ कि यह शोध कार्य पूर्णतः साहित्यिक चोरी से मुक्त है।

30/12/2020

दिनांक :

शोधार्थी

रॉक्सी
पंजीयन क्रमांक – 998/19
हिन्दी विभाग,
भाषा एवं साहित्य विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय,
विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ

CERTIFICATE

This is to certify that the M.Phil. Dissertation titled **"सामाजिक समरसता एवं रैदास का काव्य"** submitted by **Ms. Roxy** is an original research work and has not been previously submitted in part or full for the award of any other degree or diploma to this or any other university.

The M.Phil. Dissertation submitted to Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Lucknow satisfies all the requirements as stipulated in the Master of Philosophy (M.Phil.) Regulations (2016) as amended in 2019 and it is fit for submission and evaluation for the award of the degree of Master of Philosophy of the University.

30/12/2020

Date: **Supervisor**

Head of the Department

आभार

आभार

मेरे शोध कार्य को पूरा करने में कई लोगों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन लोगों के अभाव में मेरे लिए इस कार्य को पूरा करना संभव नहीं था। इस क्रम में, मैं सर्वप्रथम अपने माता–पिता (श्रीमती गुड्डी देवी, श्री राम गोपाल) के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जिन की असीम कृपा और आशीर्वाद से आज मेरा यह शोध कार्य संपन्न हो पाया है।

तत्पश्चात में अपने आदरणीय गुरुवर **हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ0 'सर्वेश कुमार सिंह'** के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस लघु शोध को पूर्ण करने का प्रोत्साहन दिया। उन्होंने अपने व्यस्त जीवन में से समय निकाल कर विषय चयन से लेकर संपूर्णता तक सरलता तथा आत्मीयता का परिचय देकर मेरे विषय को सफल बनाने में सहायता की। उन्होंने समय–समय पर मेरे सभी प्रश्नों का समाधान किया। वह सदैव मुझे सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करते रहे और उनका सहयोग मेरे कार्य को आसान बनाता रहा। मैं अंतर्मन से उनके प्रति श्रद्धावन्त हूँ। उनकी प्रेरणा के अभाव में यह कार्य संभव नहीं था।

मैं अपने हिंदी विभाग के अन्य गुरुजनों डॉ0 **'बलजीत कुमार श्रीवास्तव'** डॉ0 **'शिव शंकर यादव'** डॉ0 **'प्रीति राय'** व डॉ0 **'नमिता जैसल',** के प्रति आभारी हूं। इनसे प्राप्त सुझाव मेरे शोध कार्य के लिए लाभप्रद रहे। साथ ही मैं अपने हिंदू महाविद्यालय की गुरु **'विजया सती'** के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, जिनसे मुझे हमेशा प्रेरणा मिलती रही। मैं चाहती हूँ कि आपसे मुझे ताउम्र प्रेरणा मिलती रहे। मैं अपने गुरु **विमलेंदु तीर्थंकर** के प्रति भी विशेष आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने इस कार्य में मेरी अनेक प्रकार की सहायता की।

मैं अपने विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के सभी कर्मचारियों को धन्यवाद देती हूँ,, जिन्होंने इस कार्य में मेरी सहायता की। मैं अपने विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के प्रति भी विशेष आभारी हूँ। साथ ही मैं उन सभी पुस्तकालयों के प्रति सदा आभारी हूँ, जिनमें उपलब्ध पुस्तकों तथा ग्रंथों से मुझे सहयोग मिला।

मैं अपने भाई बहन और भाभी जी **(**हरवीर, रीता, राजवीर, नेहा, किशनवीर, पूनम**)** के प्रति आभारी हूँ, जिनसे प्राप्त आर्थिक सहयोग ने मेरे लघु शोध कार्य को अंतिम रूप दिया।

तत्पश्चात में कुछ लोगों का नाम लेना चाहूँगी जिन्होंने मेरी विशेष सहायता की। इनमें सर्वप्रथम में अपने मित्र शिवप्रसाद जी को हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मेरे लघु शोध कार्य में प्रारंभ से लेकर अंत तक असीम सहायता की। साथ ही मैं अपने मित्र सुभाष जी को भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने इस कार्य में मेरी विशेष सहायता की। मैं अपने अग्रज प्रवीण त्यागी जी को कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने इस कार्य में मेरी सहायता की। साथ ही मैं अपनी प्रिय स्वाति सिंह जी को भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मेरी विशेष सहायता की।

तत्पश्चात् में अपने मित्र प्रभाकर को हृदय से धन्यवाद देती हूँ, जिसने मेरे शोध कार्य की अशुद्धियों को शुद्ध किया।

साथ ही मैं अपने मित्रों **(**अनीता, शिवम सिंह, शर्मानन्द, दीपक मिश्रा, कादिर हुसैन, प्रीति, अनूप कुमार, गुलाब, अतुल शुक्ला, आदर्श मिश्रा, साहिल कैरो, लोह कुमार, विकास मौर्या, सोनम तोमर, अभिलाषा**)** के प्रति विशेष आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने इस कार्य में मेरी अनेक प्रकार की सहायता की। मैं अपने कुछ और मित्र धर्म, सुमन, कंचन, निधि के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मुझे अपने इस कार्य के लिए अनेक सुझाव दिए।

अंत में मैं उन सभी सह–कार्यकर, मित्रों, स्नेही–जनों, सहृदयी, शुभचिंतकों और आत्मीय जनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से मुझे सहायता प्रदान की और मेरे शोध को प्रारंभ से संपन्नता तक ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही मेरे मानसिक तनाव को कम करने में मेरी सहायता की।

हालांकि मैंने इस शोध कार्य में अपनी समझ के अनुसार पूर्ण सावधानी बरती है, किंतु अनावश्यक भूल और त्रुटियों के लिए मुझे क्षमा करें। अपने शोध कार्य की सीमाओं से भी मैं भलीभांति परिचित हूँ। अतः मैं पूर्णता का दावा बिल्कुल नहीं करती। मेरा प्रस्तुत अध्ययन तो दिशा निर्देश मात्र है। मेरे इस शोध कार्य से भावी शोधार्थियों को किंचित सी भी सहायता मिलेगी, तो मैं अपने इस कार्य को सार्थक समझूंगी।

भूमिका

भूमिका

साहित्य अभिव्यक्ति का ऐसा माध्यम है, जो अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों की अपेक्षा अधिक सम्प्रेषणीय, प्रभावी तथा व्यापक है। यूँ तो संपूर्ण हिंदी साहित्य ही रुचि का विषय है, परंतु हिंदी साहित्य में भक्ति काल को स्वर्ण काल कहा गया है। इसलिए मेरी रुचि भक्ति काल में अधिक रही है। भक्ति काल में अनेक श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण कवि हुए। इन सभी के प्रति मेरी रुचि रही है, परंतु रैदास के प्रति मेरी विशेष रुचि रही है क्योंकि रैदास में विनम्र स्वभाव देखने को मिलता है। वह बहुत ही विनम्र स्वभाव से अपनी बात को भली–भाँति अभिव्यक्त कर देते हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आज के समय में विनम्र स्वभाव की अधिक आवश्यकता है क्योंकि बहुत छोटी–छोटी बातों पर आजकल बहुत बड़े बड़े दंगे हो जाते हैं। रैदास बहुत ही विनम्र स्वभाव से लोगों को सामाजिक समरसता का पाठ पढ़ाते हैं। रैदास नें अपने काव्य के माध्यम से जाति, वर्ण, वर्ग, लिंग, संप्रदायिकता तथा आडंबर आदि का भेद मिटाकर स्वतंत्रता समानता, मानवीय मूल्यों को स्थापित करनें का प्रयास किया है। इन सभी बातों को केंद्रित करते हुए, मैंने रैदास के काव्य पर लघु शोध करने का निर्णय लिया और हिंदी विभागाध्यक्ष आदरणीय डॉ0 'सर्वेश कुमार सिंह' की सलाह से अपने शोध कार्य का विषय 'सामाजिक समरसता एवं रैदास का काव्य' रखा अपने शोध कार्य का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए मैंने इस शोध कार्य को पाँच अध्यायों में विभक्त किया है, जो इस प्रकार हैः–

प्रथम अध्याय 'सामाजिक समरसता : स्वरूप' के अंतर्गत दो उपाध्याय '**सामाजिक समरसता का अर्थ**' तथा '**सामाजिक समरसता और साहित्य**' को व्याख्यातित किया गया है।

सामाजिक समरसता का अर्थ है **Harmony**, दो भिन्न प्रकार के पहलुओं या विचारों के बीच परस्पर द्वंद ना होकर अपने दायरे में रहते हुए एक दूसरे के विचारों व अस्तित्व का सम्मान करना ही सामाजिक समरसता कहलाता है।

भारतीय संस्कृति की आत्मा समरसता पूर्ण है। धर्म सापेक्षिकरण, धर्मनिरपेक्षिकरण, सर्वधर्म, सम्भाव, मानवतावाद, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय आदि अवधारणाएं सामाजिक समरसता की पोषक रही हैं। विविधता में एकता का भाव समरसता का प्रतिनिधित्व करता है।

'सर्वे भवंतु सुखिनः' यह भारतीय संस्कृति का अमर वाक्य, व्यक्ति नहीं समष्टि के कल्याण, सुख समृद्धि एवं हित की बात करता है, जहां एक नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्य सभी के हित की बात की जाए वही समरसता का उच्च आदर्श बनता है। मनुष्य समाज में व्याप्त बाह्य आडंबर, कर्मकांड, दैविक–दैहिक भौतिक पापों और तापों से मुक्ति का भाव भी इसी में समाहित है। **'मैं'** शब्द व्यक्तिगतता का प्रतीक है, जबकि **'हम'** शब्द में सामाजिक समरसता का भाव छिपा है। समरस समाज में ऊँच–नीच, जातिगत भेदभाव, क्षेत्र, वर्ण, वर्ग, धर्म संप्रदाय का संघर्ष नहीं है।

'सामाजिक समरसता और साहित्य' उपाध्याय के अंतर्गत सामाजिक समरसता और साहित्य के अन्तः सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। साहित्य परंपरागत मूल्यों की पुर्नव्याख्या करता है तथा आधुनिक विमर्श को स्वीकारता है। नवीनता को स्वीकारना, आत्मसात करना हमारे समाज के हित में है। समाज में फैली व्याप्त कमियों को साहित्य के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया जाता है। भारतीय साहित्य में हमें सामाजिक समरसता का भाव देखने को मिलता है। तुलसीदास कृत रामचरितमानस सामाजिक समरसता का प्रतीक है। जब अयोध्या से राम का परिवार राम से मिलने आया, तो लक्ष्मण कैकई को देखकर भला बुरा कहने लगे उनका साथ भरत और शत्रुघ्न देने लगे पर श्री राम ने उन्हें ऐसा करने से रोका क्योंकि वह परिवार में समरसता चाहते थे। गुरु घासीदास सामाजिक समरसता के पथ प्रदर्शक हैं, जिन्होंने समरसता, समन्वय, एकता, अहिंसा, त्याग, सेवा, समता, प्रेम, सहभागिता आदि का पाठ पढ़ाया है।

द्वितीय अध्याय 'रैदास का काव्य :एक परिचय' के अंतर्गत रैदास के काव्य के भाव–पक्ष, शिल्प–पक्ष एवं वैशिष्ट्य पर दृष्टि डाली गई है। भक्तिकालीन समाज में व्याप्त विसंगतियों के दौर में मानव कल्याण की भावना रैदास का प्रमुख लक्ष्य था।

रैदास ने समाज में सुधार लाने की चेष्टा कबीर की तरह खंडनात्मक पद्धति तथा अक्खड़पन से नहीं की है, अपितु विनम्रता से मानव मन की दोषपूर्ण नीतियों का परिष्कार करने का प्रयास किया है। उन्होंने बाह्य आडंबर को बड़ी ही विनम्रता से नकारा है।

रैदास के काव्य की विषय वस्तु जितनी सहज स्वाभाविक नैसर्गिक और प्रभावी है, उनकी अभिव्यक्ति का पक्ष भी उतना ही नैसर्गिक एवं प्रबल है। रैदास की काव्य भाषा मुख्यतः ब्रज है।

भक्ति कालीन समय में जाति–पाँति, धर्म, वर्ण व्यवस्था, वर्ग ,पाखंड, अंधविश्वास आदि के कारण असमानता फैली थी । संत रैदास ने समाज में व्याप्त बुराइयों एवं कुरीतियों को समाप्त करने के लिए अत्याधिक संघर्ष किया तथा समाज को बिखरने से बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

तृतीय अध्याय **'सामाजिक समरसता एवं भक्तियुगीन काव्य'** है जिसके दो उपाध्याय हैं। प्रथम **'भक्तियुगीन काव्य का परिक्षेत्र'** तथा द्वितीय **'सामाजिक समरसता की विभिन्न ध्वनियां जायसी, कबीर, सूर, तुलसी, एवं मीरा'**

'भक्तियुगीन काव्य का परिक्षेत्र' उपाध्याय पर प्रकाश डालते हुए बताया गया है कि भारतीय हिंदी साहित्य के इतिहास में जो कालजयी अमर रचनाएँ रची गई, उनमें सामाजिक समरसता की केंद्रीयता है। ये रचनाएं हिंदी भाषा और साहित्य की ऐसी अनुपम निधि हैं, जिनसे हिंदी साहित्यकारों और अन्य लोगों को गौरव की अनुभूति होती रहेगी। मानवीय भावों को समुचित रूप से उद्‌बोधित करनें तथा आनंदित करने में मध्यकालीन साहित्य निश्चित रूप से अद्वितीय है। **'सामाजिक समरसता की विविध ध्वनियां जायसी, कबीर, सूर, तुलसी, एवं मीरा'** उपाध्याय में इन कवियों के काव्य पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। तुलसीदास ने कलयुग के माध्यम से विषमता से ग्रस्त समाज का चित्रण किया है। साथ ही तुलसीदास ने जाति, धर्म आदि सभी पक्षों में समन्वय व एकता स्थापित करने का प्रयास किया है। सूरदास ने कृष्ण के माध्यम से सामाजिक समरसता को दर्शाया है। वैसे तो सूरदास मूलतः प्रेम के कवि हैं। उनके काव्य का मूल आधार श्रृंगार और वात्सल्य है। कबीर

के समय में वर्ण–व्यवस्था, जाति भेद, छुआछूत का जबरदस्त बोलबाला था। कबीर ने उसका खुलकर विरोध किया है। मीरा की भक्ति भावना माधुर्य भाव की है। मीरा के संपूर्ण काव्य में कृष्ण के प्रति मधुर भक्ति देखने को मिलती है। मीरा ने स्वयं को कृष्ण की स्वकीया पत्नी मानकर कृष्ण की मधुर प्रेम लीलाओं का वर्णन किया है। मलिक मोहम्मद जायसी के काव्य में सामाजिक समरसता के विविध पक्ष देखने को मिलते हैं। जायसी ने अपने काव्य के माध्यम से हिंदू मुस्लिम में एकता स्थापित करने का प्रयास किया है।

चतुर्थ अध्याय **'सामाजिक समरसता एवं रैदास की कविता'** है जिसके दो उपाध्याय हैं, प्रथम **'रैदास के काव्य में सामाजिक समरसता का स्वरूप'** तथा द्वितीय **'रैदास के काव्य में सामाजिक समरसता का वैशिष्ट्य'** 'रैदास के काव्य में सामाजिक समरसता का स्वरूप' उपाध्याय के अंतर्गत रैदास के काव्य में सामाजिक एकता, मानवतावादी, श्रम के मूल्यों की पहचान और सर्वधर्म समभाव देखने को मिलता है। निर्गुण काव्यधारा में अनेक संत हुए, जो समाज में व्याप्त बुराइयों से लड़ते रहे। रैदास श्रम रूपी कर्म को करते हुए अपनी कविता के माध्यम से श्रम को चंदन की तरह सुगंधित करते हैं और अपनी वाणी से पानी की तरह प्रेम पूर्वक संसार को शीतलता प्रदान करते हैं। रैदास की साधना श्रम में ही है। वह श्रम की साधना में तल्लीनता, मन–मंदिर में वाणी और कर्म के चंगा होने की बात करते हैं। अगर मन की साधना पवित्र है, तो श्रम रूपी वाणी कर्म की प्रधानता को मन चंगा तो कठौती में गंगा जैसा पवित्र बना देती है। श्रम करते रहने से समस्याओं का समाधान होता रहता है और समस्याओं के उत्पन्न होने की संभावना भी कम रहती है।

'रैदास के काव्य में सामाजिक समरसता का वैशिष्ट्य' उपाध्याय के अंतर्गत दिखाया गया है कि रैदास मनुष्यता के पक्षधर थे। उनका समस्त चिंतन मनुष्यता के विकास के लिए तत्पर दिखाई देता है। वह भक्ति के शास्त्रीय परंपरा के स्थान पर उसे सहज रूप से ग्रहण करते हैं। उन्होंने भक्ति को मानवीय प्रेम के रूप में प्रयुक्त किया है। आज के समय में भारतीय समाज भाषाई, जाति व क्षेत्र के आधार पर, कहीं हिंदू राष्ट्र के नाम पर तो कहीं इस्लामी जिहाद आदि आधारों पर वैमनस्य

फैला हुआ है। आज रैदास का काव्य सामाजिक समरसता और सह अस्तित्व के लिए पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

पंचम अध्याय **'सामाजिक समरसता का वर्तमान परिदृश्य एवं रैदास की प्रसंगिकता'** है, जिसके अंतर्गत दो उपाध्याय है। प्रथम **'सामाजिक समरसता का वर्तमान परिदृश्य'** तथा द्वितीय **'रैदास की वर्तमान प्रासंगिकता'।** 'सामाजिक समरसता का वर्तमान परिदृश्य' के अन्तर्गत आज के संदर्भ में सामाजिक समरसता पर विचार किया गया है। जिस देश में सामाजिक समरसता होती है, वह देश बहुत ही तेजी से विकास करता है। समरसता से समाज के लोगों में एकजुटता आती है और सभी जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग के लोग एक साथ मिलजुलकर रहते हैं। सामाजिक समरसता से समाज के लोगों में एक दूसरे के प्रति परस्पर प्रेम की भावना जागृत होती है। सामाजिक समरसता की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि वर्तमान समय में समाज बंटकर वर्गों में विभक्त हो रहा है, प्रत्येक वर्ग अकेले उन्नति की सोच रहा है। ऐसे में देश की उन्नति होना संभव नहीं है। देश को प्रगति के पथ पर ले जाने के लिए सभी वर्गों को एकजुट होकर काम करना होगा। देश का जो पिछड़ा वर्ग है, अक्षम है और अशक्त है। उसे आगे लाना होगा तथा उसमें सामर्थ्य पैदा करना होगा। समाज का प्रत्येक वर्ग जब अपना दायित्व निभाने के लिए समर्थ हो जाएगा तब देश का कल्याण एवं संपूर्ण विकास अवश्य ही हो उठेगा।

'रैदास की वर्तमान प्रासंगिकता' उपाध्याय के अन्तर्गत रैदास के वर्तमान महत्व पर प्रकाश डाला गया है। दिन प्रतिदिन बढ़ते अपराध आज सामाजिक उत्पीड़न का कारण बने हुए हैं। सुरक्षित उच्च पदों पर बैठे लोग अधिक भ्रष्टाचारी हो गए हैं। मानवता, भाईचारे तथा आदर्श की बात अब खोखली सी लगने लगी है। ऐसे समय में हमें आवश्यकता है, रैदास के काव्य का अध्ययन करने की क्योंकि उन्होंने एक अद्भुत **'बेगमपुरा'** राज्य की कल्पना की है, जहां किसी भी प्रकार की कमी नहीं है बेगमपुरा एक शहर है। यह आज के देश की तरह नहीं है। आज हमारा देश अन्य शहरों और अनन्य गांव में विभाजित है, जबकि रैदास के बेगमपुरा शहर में किसी भी प्रकार का बंटवारा नहीं है, न ही कोई भेदभाव है अतः रैदास के बेगमपुरा शहर में किसी भी प्रकार का दुःख नहीं है।

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

अध्याय	विवरण	पेज न.
प्रथम अध्याय	**सामाजिक समरसता : स्वरूप**	**1–14**
	1.1 सामाजिक समरसता का अर्थ	1–9
	1.2 सामाजिक समरसता और साहित्य	10–14
द्वितीय अध्याय	**रैदास का काव्य : एक परिचय**	**15–31**
	2.1 भाव–पक्ष	15–19
	2.2 शिल्प–पक्ष	20–24
	2.3 वैशिष्ट्य	25–31
तृतीय अध्याय	**सामाजिक समरसता एवं भक्तियुगीन काव्य**	**32–46**
	3.1 भक्तियुगीन काव्य का परिक्षेत्र	32–33
	3.2 सामाजिक समरसता की विविध ध्वनियां : जायसी, कबीर, सूर, तुलसी, एवं मीरा	34–46
चतुर्थ अध्याय	**सामाजिक समरसता एवं रैदास की कविता**	**47–58**
	4.1 रैदास के काव्य में सामाजिक समरसता का स्वरूप	47–50
	4.2 रैदास के काव्य में सामाजिक समरसता का वैशिष्ट्य	51–58
पंचम अध्याय	**सामाजिक समरसता का वर्तमान परिदृश्य एवं रैदास की प्रासंगिकता**	**59–72**
	5.1 सामाजिक समरसता का वर्तमान परिदृश्य	59–62
	5.2 रैदास की वर्तमान प्रासंगिकता	63–72
	उपसंहार	**73–76**
	ग्रंथ सूची	**77–81**

प्रथम अध्याय

1. सामाजिक समरसता : स्वरूप

1.1 सामाजिक समरसता का अर्थ

1.2 सामाजिक समरसता और साहित्य

प्रथम अध्याय
सामाजिक समरसता : स्वरूप

1.1 सामाजिक समरसता का अर्थ

समरसताः– समरसता का अर्थ होता है Harmony, दो भिन्न तरह की पहलुओं या विचारों के बीच परस्पर द्वंद ना होकर अपने–अपने दायरे में रहते हुए एक दूसरे के विचार व अस्तित्व का सम्मान करना।

भारतीय संस्कृति में समरसता

भारतीय संस्कृति की आत्मा समरसतापूर्ण है। धर्म सापेक्षीकरण, धर्म निरपेक्षीकरण, सर्वधर्म, समभाव, मानवतावाद, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय आदि अवधारणा सामाजिक समरसता की पोषक रही है विविधता में एकता का भाव समरसता का प्रतिनिधित्व करता है।

'सर्वे भवंतु सुखिनः' यह भारतीय संस्कृति का अमर वाक्य, व्यक्ति नहीं समष्टि के कल्याण, सुख–समृद्धि एवं हित की बात करता है। जहाँ एक नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्य के हित की बात की जाए वही समरसता का उच्च आदर्श बनता है। मनुष्य समाज में व्याप्त बाह्य आडंबर, कर्मकांड, दैविक–दैहिक भौतिक पापों और तापों से मुक्ति का भाव भी इसी में समाहित है। 'मैं' शब्द व्यक्तिगत का प्रतीक है जबकि 'हम' शब्द में सामाजिक समरसता का आधार छुपा है। समरस समाज में ऊँच–नीच, जातिगत भेदभाव, क्षेत्र, वर्ण, वर्ग, धर्म, सम्प्रदाय का संघर्ष नहीं है।

हिन्दू संस्कृति या भारतीय संस्कृति अद्वैत के सिद्धांत पर आधारित संस्कृति है। भारत का अपना सामाजिक दर्शन है। विभेद हिन्दू सिद्धांत या विभेद हिन्दू संस्कृति नहीं है। सामाजिक समरसता यद्यपि सामाजिक आदर्श का प्रत्यय है, यह भारतीय सामाजिक दर्शन और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से उत्पन्न सामाजिक विचार है। सामाजिक समरसता अद्वैत के सिद्धांत पर आधारित भारतीय संस्कृति की

विशेषता है। हमारी सनातन मान्यता है कि सृष्टि में एक ही चैतन्य विद्यमान है। समरसता का अर्थ है 'आत्मवत सर्वभूतेषु'। 'आत्मवत सर्वभूतेषु' का अर्थ है, सभी को अपना समझकर किया जाने वाला व्यवहार (आत्मीयता या आत्मीयता का व्यवहार)। आत्मीयता में संबंधों की प्रगाढ़ता होती है इस अर्थ में समरसता का दर्शन केवल आध्यात्मिक दर्शन नहीं है, संगठित समाज का व्यावहारिक चिंतन भी है यदि व्यापक सामाजिक संदर्भ में देखें तो सामाजिक समरसता का अर्थ है–(आत्मीयता और समादर सबका सम्मान और सबसे आत्मीयतापूर्ण, आदरयुक्त व्यवहार)।

'सामाजिक समरसता' सामाजिक आदर्श का प्रत्यय और पूर्व प्रत्यय है। वस्तुतः यह समाज के समस्त वर्गों के संगठन का एक अद्वित्य प्रयास है। जिसका लक्ष्य एक (विभेद मुक्त) आदर्श समाज का निर्माण करना है।

सामाजिक समरसता एकात्मता का साक्षात्कार है। इसमें अभिन्नता है और सभी का सभी से एकत्व है। इसमें सामूहिक अस्तित्व की स्वीकृति है। समरसता, समानता–मूलक, बंधुत्व पर आश्रित समाज का विचार है।

सामाजिक समरसता की अंतर्वस्तु में संघर्ष के स्थान पर सह–अस्तित्व, विषमता के स्थान पर समता और समानता, वर्ग चेतना के स्थान पर सर्वमंगल की कामना (सर्वहित की मंगल कामना) निहित होती है।

समरसता का मूल

समरसता चिंतन और दर्शन में निषेध नहीं है। इसलिए यह नकारात्मक नहीं है। मूल प्रकृति में यह एक रचनात्मक आंदोलन है, जिसका लक्ष्य वैचारिक परिष्कार और सामाजिक सांस्कृतिक विकृतियों का तिरस्कार है।

समरसता संघर्ष के सिद्धांत पर आधारित नहीं है। इसलिए यह प्रतिरोधात्मक आन्दोलन नहीं है, यह पृथकतावादी या अलगाववादी आंदोलन नहीं है।

सामाजिक समरसता परंपरागत मुक्ति का आंदोलन नही है। यह भेदभाव से मुक्ति, संकीर्णता से मुक्ति का आंदोलन है। यह सामान्य सामाजिक सांस्कृतिक और राजनैतिक विरोध से परस्पर निर्भरता का आंदोलन है।

सामाजिक समरसता 'पहचान' और 'अस्मिता' का प्रश्न नहीं है न ही इसमें पृथक अस्तित्व या अस्तित्व का आत्मसमर्पण है। इसमें सह अस्तित्व है अर्थात इसमें (समत्व, अपनत्व और ममत्व के साथ सामाजिक एकत्व) है।

समरसता की अवधारणा

सामाजिक समरसता का विचार और संस्कार सनातन भारतीय दर्शन से उपजा है। इसलिए इसमें आध्यात्मिकता भी है और नैतिकता भी है। वस्तुतः यह आंदोलन आत्मसर्वभुतेषु के दार्शनिक विचार पर आधारित है 'सामाजिक समसरता' भारतीय संस्कृति का आधार है।

सामाजिक समरसता के चिंतक

समरसता के चिंतक में महात्मा बुद्ध सम्यक दर्शन और विचार समाहित है। इसमें संत रामानंद का व्यवहार और संस्कार (अस्पर्शी नहीं सर्व–स्पर्शी समाज जीवन की कल्पना) भी सम्मिलित है। यह गुरू अमरदास जी का दर्शन और चिंतन 'पहले पंगत, फिर संगत', की अभिव्यक्ति है। इस तरह यह एक आदर्श समाज के निर्माण का व्यावहारिक चिंतन है।

सामाजिक समरसता का महत्व

यह आंदोलन समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव को नकारता है परंतु केवल सामाजिक विषमता, अस्पृश्यता, छुआछूत आदि अतीत के अनुभव के आधार पर इस आन्दोलन का मुल्यांकन करना अपर्याप्त है। सामाजिक समरसता आदर्श नियमों, सामाजिक मूल्यों से घनिष्ठ रूप से सम्बंधित है।

इस आंदोलन की अंतर्वस्तु प्राचीन आग्रहों और दुराग्रहों से मुक्ति है। इसमें समाज में व्याप्त रूढ़ियों से स्वतंत्रता है तथा सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह

भी। व्यापक संदर्भ में सामाजिक समरसता मानवीय अस्मिता नारी प्रतिष्ठा, समता, समानता और सांस्कृतिक समरसता का संस्कारनिष्ठ कार्य है। इसलिए वर्तमान के अनुभव के रूप में इसका विश्लेषण और मूल्यांकन आवश्यक है।

अतः गुणात्मक एवं भावनात्मक रूप से सामाजिक समरसता की अवधारणा अन्य समकालीन अवधारणाओं से श्रेष्ठ है। इसलिए सामाजिक समरसता को समाज परिवर्तन के सतत सामूहिक प्रयास के रूप में पारिभाषित किया जा सकता है। इस आंदोलन में निरंतरता है और व्यापकता है। समरसता के इस आंदोलन का प्रभाव समाज में जीवन के समस्त पक्षों अर्थात् सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं धार्मिक, पर समान रूप से पड़ा रहा है। समरसता का सुखद परिणाम यह होगा कि हम सब एक होंगे हमारे अंदर अपनत्व जाग्रत होगा।

सामाजिक समरसता का उद्देश्य

मूलतः सामाजिक समरसता का उद्देश्य जातिगत भेदभाव एवं अस्पृश्यता का जड़मूल से उन्मूलन कर लोगो में परस्पर प्रेम एवं सौहार्द बढ़ाना हैं। इसका लक्ष्य समाज के सभी वर्णों एवं वर्गों के मध्य एकता स्थापित करना है।

आज समरसता का चिंतन एक आंदोलन का रूप ले चुका है। यह आंदोलन केवल वैचारिक आंदोलन नहीं हैं। यह सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन भी है। इसकी प्रकृति शांत, धीर, गंभीर है, परंतु यह प्रभावकारी और परिणामकारी है।

सामाजिक समरसता के प्रतीक गाँधी

सामाजिक समरसता के विभिन्न पहलुओं को महात्मा गाँधी ने अपने विमर्श का विषय बनाया। अपने लेखन और कर्म से समाजिक परिवर्तन को संभव कर दिखाया। सामाजिक समरसता के जाति, धर्म, भाषा, वर्ग, लिंग और श्रम जैसे विषयों पर उन्होंने बेबाक टिप्पणियाँ लिखी और समाज में परिवर्तन के प्रति अपनी उत्कंठा प्रकट की। अपने समस्त विचारों और कार्यों में उन्होंने सामाजिक समरसता के लिए प्रयास किया। सामाजिक समरसता के अपने प्रयास में उन्होंने अपने अभियान को घृणा, निंदा के आधार पर नहीं अपितु सत्याग्रह के आधार पर चलाया। अपने से अन्य का सम्मान वं आपसी संवाद ही उनका मुख्य साधन रहा। सत्य और अहिंसा ही महात्मा गाँधी के संपूर्ण चिंतन एवं कर्म का केन्द्र बिंदु है। अहिंसा के माध्यम से ही हम सत्य के विभिन्न रूपों के अस्तित्व को स्वीकार कर सकते है और विभिन्नताओं के बावजूद जीवन संचालित कर सकते हैं।

"मुझे अपने देशवासियों की पीड़ा के निवारण से ज्यादा चिंता मानवप्रकृति के बर्बरीकरण को रोकने की है।"[1]

इस अहिंसा दृष्टि का व्यावहारिक आधार व्यक्ति द्वारा न केवल अन्य व्यक्ति अपितु सृष्टि के साथ प्रेमपूर्ण संबंध स्थापित करना है।

गांधी जी ने हर उस प्रथा, विशेषाधिकार व एकाधिकार का विरोध किया जो किसी भी शोषण, दमन, हिंसा, उत्पीड़न पर आधारित हो। **"मैं विशेषाधिकार और एकाधिकार से घृणा करता हूँ जिसमें जनसाधारण सहभागी न हो सके, वह मेरे लिए त्याज्य है।"**[2] वह जातिप्रथा को तीन आधारों पर चुनौती देते है[3], वे हैं–

1. विवाह

2. खानपान

3. उच्चावच क्रम

वह इन तीनों में से किसी को भी स्वीकार नहीं करते और इन प्रतिबंधों को समाज के लिए अनावश्यक एवं हानिकारक मानते हैं। 1931 में वह लिखते हैं–**''अंतर्जातीय विवाहों तथा अंतर्जातीय भोजों को लेकर अनावश्यक और हानिकरक प्रतिबंध लगा दिए गए। विभिन्न वर्णों के लोग परस्पर विवाह कर सकते है और एक–दूसरे के साथ बैठकर भोजन कर सकते है। ये प्रतिबंध, शुद्धता और सफाई के हित में आवश्यक हो सकते है। पर यदि कोई ब्राह्मण लड़का शूद्र लड़की से विवाह करता है या शूद्र लड़का ब्राह्मण लड़की से विवाह करता है। तो वर्ण के नियम का कोई उल्लंघन नहीं होता।''**[4]

जहां तक उच्चावच क्रम का प्रश्न है वह इस पिरामिडीय व्यवस्था को अस्वीकार करते हैं और एक सागरीय वलय की कल्पना करते हैं जिसमें सभी मनुष्य समान है। वह स्पष्ट करते हैं– **''छुआछूत हिंदू समाज में घुसे ऊंच–नीच के भेद का परिणाम है और इसे नष्ट कर रहा है। इसलिए अस्पृश्यता पर आक्रमण वास्तव में इस ऊँच–नीच वाद पर आक्रमण है। जिस क्षण छुआछूत का उन्मूलन हो जाएगा सच्चे वर्ण धर्म की स्थापना हो जाएगी– समाज के चार भाग जो परस्पर पूरक होंगे जिनमें कोई किसी से श्रेष्ठ अथवा हीन नहीं होगा।''**[5]

इसी के साथ वह शारीरिक एवं मानसिक श्रम के बीच की खाई को भी समाप्त करने की बात कहते है। बौद्धिक तबके द्वारा बहुसंख्यक श्रमशील जनता का तिरस्कार एक अस्वस्थ समाज की निशानी है। अतः वह हर एक व्यक्ति से यह आशा करते है कि वह शारीरिक श्रम करे –**''महान प्रकृति चाहती है कि मनुष्य अपनी रोटी के लिए पसीना बहाए। इसलिए जो व्यक्ति एक मिनट भी बर्बाद करता है वह अपने पड़ोसियों पर भार है, और ऐसा करना अहिंसा के प्रथम पाठ का उल्लंघन है।''**[6]

गांधीजी ने भारतीय समाज के एक और भेद को अपने विचार का विषय बनाया वह है ग्रामीण शहरी का भेद। उनके लिए भारत का अर्थ ही है–**''सात लाख गाँव।''**[7] वह तत्कालीन समय में विद्यमान गांव को वैसा ही नहीं रहने देना चाहते है

अपितु **''गांवों को सामाजिक संरचना का आधार बनाते हुए उनमें क्रांतिकारी बदलाव चाहते हैं।''**[8] गांवों में विद्यमान विभिन्न समस्याओं, अस्वच्छता, छुआछूत, अशिक्षा बेरोजगारी, आदि में व्यापक बदलाव लाना चाहते हैं। उनकी इच्छा थी कि शहर गांवों का शोषण करना बंद कर दे–**''मैं नगरों की बढ़वार को एक बुराई मानता हूँ यह मानव जाति और दुनिया के लिए दुर्भाग्य का विषय है। यह इंग्लैंड और निश्चित रूप से भारत के लिए भी दुर्भाग्य का विषय है। अंग्रेजों ने शहरों के माध्यम से भारत का शोषण किया। शहरों ने पलटकर गांवों का शोषण किया। शहरों का भवन निर्माण गांवों के रक्त रूपी सीमेंट से हुआ है। मैं चाहता हूँ कि जो रक्त आज नगरों की धमनियाँ में बह रहा है वह फिर एक बार गांवों की रक्तवाहिकाओं में बहने लगे।''**[9]

गाँधी जी भारतीयों को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक तौर पर नई दिशा की ओर उन्मुख करना चाह रहे थे। अतः यह कहा जा सकता है कि गाँधी जी ने सामाजिक समरसता के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए। ब्रिटिश शासन द्वारा तत्कालीन समाज में जिन बुराईयों को फैलाया गया था, उनके प्रति न केवल आलोचनात्मक दृष्टि प्रस्तुत की अपितु वैकल्पिक विचार एवं संस्थाएँ भी स्थापित की। वह सामाजिक समरसता की जिन समस्याओं से लड़े वे समस्याएँ आज भी अन्य रूप में हमारे सामने मौजूद है। हमारा कर्तव्य है कि हम हमारे समय की इन समस्याओं को दूर करने हेतु गाँधीजी जैसे विचारकों के प्रयासों को फलीभूत करने का प्रयास करें।

सामाजिक समरसता और डॉ. भीमराव अम्बेडकर

डॉ. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर उच्चकोटि के राष्ट्रभक्त और सामाजिक समरसता के सूत्रधार थे। उनके चिंतन में हिन्दू समाज की एकात्मकता का दर्शन स्पष्ट दिखाई देता है। वे ऐसे समाज सुधारक थे जो सदियों से वंचित व पीड़ित बंधुओं का मर्मज्ञ जानते थे वह जीवनपर्यन्त उनके उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहे।

बाबा साहेब कहा करते थे कि **'समता के बिना स्वतंत्रता निरर्थक है।'** वे यह जानते भी थे कि हिन्दू समाज के कुछ लोग उनकी गिनती हीन श्रेणी में करते है।

डॉ. अम्बेडकर ने दलित, शोषित, उपेक्षित लोगों के उद्धार के लिए 26 जनवरी 1950 को देश में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली को बनाकर बालिग मताधिकार का प्रावधान बनाया। भारतीय संविधान दलित समाज के हित का ध्यान रखकर अनुच्छेद–14 के तहत उन के पिछड़ेपन को दूर करने की व्यवस्था की।

अनुच्छेद– 14, 15, 16 समानता के अधिकार से ही संबंधित हैं। अनुच्छेद–14 में घोषणा की गई कि– भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा...

अनुच्छेद– 15 में कहा गया– किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म, स्थान या इनमें से किसी आधार पर कोई भेद नहीं करेगा और किसी नागरिक को इनमें से किसी के आधार पर दुकानों सार्वजनिक भोजनालय पूर्णतः या अंशतः राज्य विधि से घोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघरों, सड़कों और सार्वजनिक समागमों के स्थानों के उपयोग से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद– 17 छुआछूत के व्यवहार को कानून दंडनीय अपराध घोषित करता है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर समाज के सभी अन्याय पूर्ण और दमनकारी स्वरूपों के विरुद्ध विद्रोह के प्रतीक मात्र नहीं है अपितु भारतीय समाज में उभर रही नवचेतनावादी, बहुजन जागृति के एक महान मसीहा के रूप में प्रतिष्ठित हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉक्टर अंबेडकर दलित, शोषित, पीड़ित, पिछड़ों के सामाजिक सुधार हेतु जीवन भर संघर्षरत रहे, अनेक अवरोधक तत्वों का सामना करते हुए तथा सामाजिक आर्थिक अन्याय एवं अत्याचार से पीड़ित मानवता के हिमायती और उद्धारक के सजीव मार्गदर्शक के रूप में डॉक्टर अम्बेडकर को व्यापक मान्यता प्राप्त हुई। उनका संपूर्ण जीवन मानव अधिकारों के प्रति समर्पित और चिंतन पूर्णतः मानवीय मूल्यों पर आधारित था।

बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर ने दलित, उपेक्षित तथा विभिन्न वर्गों के लिए सम्पूर्ण कार्य किया। आज दलित समाज में चारो ओर प्रकाश दिखाई दे रहा है यह बाबा साहब के प्रयासों का ही फल है। दलित समाज भी स्वयं के अंदर हिंदू समाज का एक अंग महसूस करता है।

1.2 सामाजिक समरसता और साहित्य

जीवनयापन की एक विशेष पद्धति होती है जो विविध नियमों और अनुशासनों में उपनीबद्ध रहती है। कालान्तर में यही सिद्धांत रीति अथवा परम्परा की संज्ञा को धारण कर लेते है। समय के साथ इनमें कुछ नूतन मान्यताएं जुड़ती जाती हैं और उस समाज का स्वरूप विस्तृत होता चला जाता है।

साहित्य परंपरागत मूल्यों की पुर्नव्याख्या करता है और आधुनिक विमर्शों को स्वीकारता है। नवीनता को स्वीकारना, आत्मसात करना हमारे समाज के हित में है। साहित्य के माध्यम से समाज में फैली व्याप्त कमियों को दूर करनें का प्रयास किया जाता है।

'रामचरितमानस' सामाजिक समरसता का महाकाव्य

भारतीय साहित्य में सामाजिक समरसता का भाव देखनें को मिलता है। तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' सामाजिक समरसता का प्रतीक है। जब अयोध्या से परिवार राम से वन में मिलने आया था तो लक्ष्मण कैकई को देख कर भला बुरा कहने लगे उनका साथ भरत और शत्रुघ्न देने लगे पर श्रीराम ने उन्हें ऐसा करने से रोका क्योंकि वे परिवार में समरसता चाहते थे।

शबरी के झूठे बेर खाकर उन्होंने समाज को यह संदेश दिया कि सबके साथ समानता से भी बढ़कर अपनत्व और आत्मीयता का व्यवहार करना चाहिए। राम चाहते तो शबरी के हाथ से बेर लेकर खा लेते परंतु यदि वह ऐसा करते तो वहां पर केवल समानता का व्यवहार नजर आता, आत्मीयता, अपनत्व या समरसता का नहीं।

केवट की नाव से पार हुए तो उसे मेहनताना दिया, मतलब किसी की मेहनत का हक न मारों ताकि समाज में समरसता बनी रहे। निशादराज को गले लगाकर समाजिक समरसता चाते थे। बाली का वध सामाजिक समरसता के लिए किया गया और इस पर कहा कि बाली वध न्याय संगत है क्योंकि छोटे भाई की

पत्नी पुत्रवधु के समान होती है शरणागत विभीषण को भी अपनाया। यहां पर सामाजिक समरसता झलकती है।

श्रीराम ने राजधर्म और मित्रधर्म जिस प्रकार निभाया उस आधार पर हम कह सकते है कि राम सामाजिक समरसता के प्रतीक और रामचरितमानस सामाजिक समरसता का महाकाव्य है।

सामाजिक समरसता के पथ प्रदर्शक गुरूघासीदास

समाज के विकास के बजाय राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक एकता मनोवैज्ञानिक रूप से छिन्न–भिन्न हो गई और लोगों के जीवन में ऊँच–नीच, भेदभाव, छुआछूत, आडम्बर, पाखण्ड, दिखावा जैसे दुर्गुण घर करते गये तथा अपने को दूसरों से श्रेष्ठ समझने लगे। समरसता, समन्वय, एकता, अहिंसा, त्याग, सेवा, समता, प्रेम सहभागिता कपूर की तरह उड़ता गया। लोग प्रतिस्पर्धा के भाव से एक–दूसरे को देखने लगे जिससे सुख–शांति जीवन से जाती रही। परिणामतः समाज में जाति, वर्ण, वर्ग, सम्प्रदाय, लिंग, रंग, स्तरभेद, वैमनस्य, मोह, काम, क्रोध, हिंसा का वर्चस्व होता गया। ऐसी परिस्थिति में राज्य व समाज को सही दिशा देने के लिए **बाबा गुरूघासीदास** जी ने लोगों को सत्य मार्ग सुझाया। उन्होनें भेदभाव को व्यक्ति, समाज, देश, संसार के विकास में बाधक कहा। गुरूजी ने सत्य को सृष्टि का आधार व समस्त सुख, ज्ञान–विज्ञान का मूल तथा सत्य मार्ग से ही सभी समस्याओं का उन्मूलन हो सकता है, ऐसा ज्ञान लोगों को दिया।

सत्य का अर्थ व स्वरूप

सत्य का अर्थ होता है– अमर, अनश्वर, जड़–चेतन के कण–कण में व्याप्त शक्ति। जिसको अनुभव किया जा सकता है– देखा नही। पंचतत्व–वायु जल, अग्नि, धरती, आसमान ईश्वर नहीं वरन रूपायित्व हो सकता है। सत्य इन को चालित करने वाला है जो बिन्दु में समाया हुआ है। कामायनी में प्रसाद जी कहते हैं– किसके शासन पर यह महाप्रलय हुआ।

"विश्व देव, सविता या पुषा, सोम, मरूत, चंचल पवमान;

वरूण आदि सब घूम रहे है किसके शासन में अम्लान?

किसका था भ्रू भंग प्रलय–सा जिसमें ये सब विकल रहें;

अरे। प्रकृति के शक्ति चिन्ह ये फिर भी कितने निबल रहे।"[10]

सामाजिक समरसता इस प्रकार लाई जा सकती है

यह समाज किसी एक व्यक्ति, जाति, वर्ग या समुदाय विशेष से न तो बन सकता है और न ही चल सकता है। समाज की सम्पूर्णता एवं उन्नति के लिए प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति, वर्ग या समुदाय का हो उसका सहयोग आवश्यक है। जिस प्रकार से शरीर का प्रत्येक अंग स्वतंत्र रूप से अस्तित्वहीन है अर्थात् विभिन्न अंग सामूहिक रूप से मिलकर ही शरीर का निर्माण करते हैं उसी प्रकार कोई भी व्यक्ति अपने आप में स्वतंत्र रूप से अस्तित्वहीन हैं क्योंकि विकास सामूहिकता में ही होता है। व्यक्ति के वर्ण का नहीं कर्म का महत्व है।

किन्तु इन सभी कुप्रथाओं की जड़े समाज में इतनी सुदृढ़ हो चुकी हैं कि इनका पूर्ण रूप से उन्मूलन करना निश्चित रूप से एक बहुत बड़ी चुनौती हैं। इस कार्य को करने के लिए अनेक वर्षों से कई संत, ऋषि, समाज–सुधारक एवं कई समाज सेवी संस्थायें निरन्तर कार्यरत हैं। डॉ. अम्बेडकर ने इसे संवैधानिक रूप दिया जिससे समाज में समानता लाने के प्रयासों को काफी सफलता मिली है। प्रत्येक नागरिक को उसकी जाति, पंथ, आर्थिक एवं शैक्षिक क्षमता के आधार पर हर क्षेत्र में समान अधिकार दिए गए। लोगों के पढ़े लिखे हो जाने से आर्थिक समानता में तो वृद्धि हुई है परन्तु शहरी भाव की अपेक्षा अभी छोटे कस्बों एवं गाँवों में यह समस्या बनी हुई है।

देश में सामाजिक समरसता जागरूक समाज द्वारा ही लायी जा सकती है। लोगों को जागरूक करने के लिए उनमें प्रेम एवं अपनत्व का भाव लाने की आवश्यकता है। कुंठित मन की विषमता की भावना को दूर करने की आवश्यकता

है। यह भावना दूर करने के लिए उनके साथ परस्पर प्रेम एवं सहयोग बढ़ाने की आवश्यकता है। इससे सभी लोग जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर राष्ट्र की उन्नति में सहयोग करेंगे। इससे राष्ट्रीय एकता स्थापित हो सकेगी। यदि किसी राष्ट्र का समाज संगठित होता है तो बाहरी शक्तियां भी उस राष्ट्र के विरुद्ध किसी षड्यंत्र में सफल नहीं हो पाती। भारतीय संस्कृति तो **'वसुधैव कुटुम्बकम'** को मानने वाली है। यदि यहां के लोगों को इस बात का आभास हो जाये, वे आत्म साक्षात्कार कर पायें एवं अपनी शक्ति को पहचाने तो भारतमाता फिर से उसी सर्वोच्च सिंहासन पर स्थिर होगी। जहां कभी वह पहले आरूढ़ थी। भारत वर्ष फिर से एक बार विश्वगुरू होगा। इसमें कोई संदेह नहीं। यह कार्य केवल बातों से नहीं प्रयासों से होगा। कई राजनीतिक लोग व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए इस विषय में बातें तो बहुत करते हैं किन्तु व्यावारिक रूप में कुछ नहीं करते, उन्हें समझना होगा कि इस दिशा में उठाया गया प्रत्येक सकारात्मक कदम हमें सफलता की ओर प्रवृत करेगा। आवश्यकता है लोगों को परस्पर प्रेम एवं सहयोग के प्रति जागरूक करने की ताकि सामाजिक समरसता का अर्थ महाकुंभ की तरह सही रूप में साकार हो सके जहाँ कोई जातिगत भेद–भाव नहीं हो। सभी एकसाथ मिल जुलकर रहे।

संदर्भ ग्रंथ

1. http://www.allsubjectjournal.com/archives/2017/vol4/issue5/4-7-169
2. www.allsubjectjournal.com/archives/2017/V014/issue/4-7-169
3. आचार्य, नंदकिशोर, सभ्यता का विकल्प : गॉधी दृष्टि का पुनराविष्कार, वाग्देवी प्रकाशन, बिकानेर, संस्करण, 1995, पृ0सं0, 1
4. www.allsubjectjournal.com/archives/2017/V014/issue/4-7-169
5. www.allsubjectjournal.com/archives/2017/V014/issue/4-7-169
6. www.allsubjectjournal.com/archives/2017/V014/issue/4-7-169
7. www.allsubjectjournal.com/archives/2017/V014/issue/4-7-169
8. www.allsubjectjournal.com/archives/2017/V014/issue/4-7-169
9. www.allsubjectjournal.com/archives/2017/V014/issue/4-7-169
10. प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, राजकमल प्रकाशन, नई, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994, पृ0सं0, 20

द्वितीय अध्याय

2. रैदास का काव्य : एक परिचय

2.1 भाव–पक्ष

2.2 शिल्प–पक्ष

2.3 वैशिष्ट्य

द्वितीय अध्याय
रैदास का काव्य : एक परिचय

2.1 रैदास के काव्य का भाव पक्ष

भक्तिकाल में समाज में व्याप्त विसंगतियों के दौर में मानव कल्याण की भावना रैदास का प्रमुख लक्ष्य था। रैदास ने समाज में सुधार लाने की चेष्टा कबीर की तरह खंडनात्मक पद्धति तथा अक्खड़पन से नहीं की अपितु विनम्रता से मानव मन की दोषपूर्ण नीतियों का परिष्कार करते है वह बाह्य आडंबर को बड़ी ही विनम्रता से नकारते हैंः–

''दूध तो बछड़ा थनुउ बिटारिओ।

फूल भवरा जल मिन बिगारिओ।।

माई गोविन्द पूजा कहाँ लौ चढ़ाउ।

अवरू न फूल अनूप न पावउ।।''[1]

अर्थात् दूध, फूल और जल सभी अशुद्ध है तो पूजा कहाँ से शुद्ध होगी इसलिए अपने मन को शुद्ध करना चाहिए किसी के साथ विश्वासघात नहीं करना चाहिए, किसी के ह्रदय को चोट नहीं पहुंचानी चाहिए, सबके हित की बात करनी चाहिए।

मानव जन्म से ऊँच–नीच नहीं, कर्म से ऊँच या नीच होता है। मनुष्य में अवगुणों के नाशक भगवान है। भगवान का नाम लेकर उनके जीवों का उद्धार हुआ। सारतत्व को प्राप्त कर पतित पावन हो गए।

''हम अपूजि पूजि भये हरि तैं,नाम अनुपम गया रे।

हम अपराधी नीच पर जन्मै,कुटुम्ब लाजकरै हंसीरे''[2]

अर्थात् नीच घर में जन्म लेने के कारण कोई नीच नहीं होता बल्कि नीच कर्म करने से कोई नीच होता है। गुरू रैदास के सामाजिक सम्मान का एकमात्र कारण यही था कि उनकी वाणी इतनी विनम्र और सरल थी कि किसी भी धर्म, जाति, वर्ण, वर्ग, का मनुष्य अपने जीवन को सफल बना सकता था। रैदास ने मानवता के आगे जन, पद, मान, प्रतिष्ठा आदि को लघु बताया है। उनके अनुसार मानव–मानव सब समान है।

गुरू रैदास ने इसी बात पर बल दिया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्ग के लिए भक्ति के दरवाजे खुले हैं। गुरू रैदास जी कहते हैं कि मनुष्य किसी भी वर्ण का हो, गरीब–अमीर, ऊँच–नीच, ईश्वर वहाँ निवास करता है। ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, डोम, चांडाल, मलेच्छ मन सब वही है। ये सब भगवान के भजन से मुक्त होते है और अपने तथा दूसरों के कुल को भी तारते हैः–

"जिह कुल साधु बैसनौ होई,

बरन अबरन रंकू नहीं ईसरू विमल बासु जानी ऐ जागी सोई।

ब्रहमन बसै सूद्र अरूरव्यत्री डोमचंडार मलेच्छ मन सोई।

होई पुनीत भगवंत भजन से, आपु तारि तारै कुल दोई।।"[3]

अर्थात् ईश्वर सबका है और ईश्वर किसी के साथ किसी भी प्रकार का भेद–भाव नहीं करता है। इसलिए मनुष्य को भी एक दूसरे के साथ भेदभाव नहीं करना चाहिए।

रैदास ने मनुष्य के थोथेपन और रूढ़िग्रस्त समाज को सहज शब्दों में अंधविश्वासों से दूर रहने की नसीयत दी हैः–

"जिन थोथरे पिछौरे कोई, जो परिछौरे कण हो कई।
झूठो रे यहू तन झूठी माया, झूठा हरि बिन जन्म गंवाया।
झूठा रे मंदर भोग विलास, कोई समझावै जन रैदासा।
थोथा पंडित थोथी वाणी, थोथी हरि बिन सबै कहानी।

थोथा मंदिर भोग विलास, थोथी आन देव की आस।

साचा सुमिरन नाव विश्वासा,मन वच कर्म कहै रैदासा।।"[4]

अर्थात् अपने भीतर के मन को साफ रखना चाहिए। 'मैं' हिन्दू हूँ, 'मैं' मुसलमान हूँ, 'मैं' सिख हूँ, 'मैं' ईसाई हूँ इस प्रकार के विचार त्याग कर अपनेपन के विचार को अपनाना चाहिए। जब तक व्यक्ति अहंकार त्यागकर भाईचारा नहीं अपनायेगा तब तक धन, पद, प्रतिष्ठा सब व्यर्थ है।

संत रैदास के संदर्भ में डॉ. नरेश लिखते है –**"रविदास वाणी में चित्रित समाज उनकी कविता को अनुभव से जोड़ता है यह अनुभव व्यक्तिगत भी है और सामूहिक भी सामूहिक इसलिए कि सामाजिक प्राणी के तौर पर कवि जो कुछ भी रचता है, उसमें उसकी ऐसी अनुभूति प्रकट होती है। इस प्रकार रविदास जी की वाणी का आधार कवि का व्यक्तिगत अनुभव है, जो व्यक्तिगत होते हुए भी सामूहिकता के गुण से संयुक्त है। इस प्रकर कवि संत समाज में हो रहे अन्याय के विरुद्ध खंडनात्मक और मंडनात्मक तरीके से मानव कल्याण के खातिर न्याय के लिए आवाज़ उठाते थे।"[5]**

रैदास व्यक्ति–व्यक्ति में समता, स्वतंत्रता और बधुत्व की भावना जाग्रत करना चाहते थे –

"कटुक बचन नहीं बोलिए,सब घट हरि को बास।

इहु ग्यान को दरबार है,कहै रैदास विचार।।"[6]

अर्थात् कभी भी किसी से इस प्रकार की बात नहीं करनी चाहिए जिससे उसके हृदय को ठेस पहुँचे तथा किसी की स्वतंत्रता का भी हनन नहीं करना चाहिए और न ही किसी से बैर रखना चाहिए ऐसा करने से मनुष्य, मनुष्य से जुड़ नहीं पाता है।

रैदास ऐसे आदर्श राज्य अर्थात् 'बेगमपुरा' शहर की कल्पना करते है जहाँ सभी प्रसन्न हैं, किसी को कोई दुःख नहीं है–

"बेगमपुरा शहर कौ नाउं, दूखू अन्दोहु नहीं तिहि ठांउ।

ना तसवीस खिराजु न मालु, खउफ न खाता न तरसु जवालु।।

अब मोंहि खूब वतन गह पाई, ऊँहा खैरि सदा मेरे भाई।।

काइमु दाइमु सदा पातिसाही, दोम न सेम एक सो आही।

आपादानु सदा मसहूर, ऊँहां गनी बसहि मासूर।।

तिउ तिउ सैल करैहि जिउ भावै,महरम महल न कौ अटकावै।

कहि रैदास खलास चमारा, जो हम सहरी सु मीतु हमारा।।"[7]

रैदास ने पलायनवादी संतो, जो घर–परिवार को त्यागकर सन्यास लेकर जीवन व्यतीत करते थे, को श्रम करके परिवार के साथ जीवन जीने का मार्ग सुझाया हैः–

"रैदास श्रम करि खइए,जौ लौ पार बसाय।

नेक कमाई जो करहू,कबहुँ न निहफल जाय।।

श्रम को दूसरे जानि के,जऊ पूजाहिं दिन–रात।

'रैदास' तिम्हाहि संसार में,सदा मिलिहिं सुख–चैन।।"[8]

अर्थात् सभी मनुष्यों को श्रम करके अपनी गृहस्थी के साथ जीवनयापन करना चाहिए न कि सन्यास लेकर गृहस्थी को छोड़ देना चाहिए। यदि सभी लोग सन्यास ले लेंगे तो समाज की दशा क्या होगी?

रैदास के विचार आज भी किसी राष्ट्र या समाज में प्रचलित अन्तर्विरोधों एवं समस्याओं का समाधान निकालकर मानव की खोई हुई गरिमा वापस ला सकते है। आज समाज जाति–पांति, भ्रष्टाचार, घृणा, द्वेष, आतंकवाद, मौलिक प्रतिभा का हनन, प्रकृति समस्याओं से जूझ कर नैतिक मूल्यों को खोता जा रहा है।

संत रैदास का काव्य मानव को मानवतावाद के मार्ग में ले जाने में सहायक हो सकता है। कोई राष्ट्र अगर मानववाद के पथ पर चलने की कोशिश करेगा तो उससे न केवल इस देश का बल्कि संपूर्ण विश्व का कल्याण संभव है।

2.2 रैदास का शिल्प पक्ष

भाषा अभिव्यक्ति का सबसे सहज और सरल माध्यम है। दूसरे शब्दों में 'भाषा' सृजनात्मक तथा कलात्मक संवेदनाओं का विशिष्ट प्रकटीकरण है, जिसकी परिधि में भाव प्रकाशन की समस्त सीमाएं आ जाती है। 'साहित्य भाषा' सामान्य प्रकटीकरण को न अपनाकर विशिष्ट शैली के रूप को अपनाती है। यह भाषा वक्ता की अनुभूति को स्रोता के अतःस्थल में ज्यों का त्यों बैठा देती है।

रैदास के काव्य की विषयवस्तु जितनी सहज, स्वाभाविक, नैसर्गिक और प्रभावी है। उनकी अभिव्यक्ति का पक्ष भी उतना ही नैसर्गिक एवं प्रबल है।

रैदास की काव्यभाषा ब्रज है। संत रैदास के काव्य का शब्द भंडार अत्यंत समृद्ध है क्योंकि ब्रजभाषी साहित्य की एक लम्बी परंपरा रही है। शास्त्रादि का पठन–पाठन होने का माध्यम संस्कृत होने से उसका विपुल शब्द समूह इसे विरासत में प्राप्त हुआ है। जिसे ब्रजवासियों ने अपनी भाषा की प्रकृति के अनुकूल तत्सम और तद्भव दोनों ही रूपों में प्रयुक्त किया है। साथ ही मुगल व्यवस्था के कारण अरबी, फारसी शब्दो को भी इस भाषा ने ग्रहण किया। जहां तक शब्द भंडार की दृष्टि से रैदास के काव्य का प्रश्न है तो इन्होंने ब्रजभाषा के ठेठ शब्दों को ही लिया है:–

जों अविनासी सबका कर्ता, व्यापि रह्यो सब ठौर रे।

पंच तत्त जिन किया पसारा, सो यों ही किछु और रे।

तूं तो कहत हौ यों ही कर्ता, याकूं मानिख करै रे।

तारणि तरणि सकति जे यामैं, तो आपण क्यूं न तिरै रे।

अही भरोसे सब जग बूढ़ा, सुणि पण्डित की बात रे।।"[9]

ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल संत रैदास ने संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, कारक एवं क्रियाओं का कालक्रमानुसार प्रयोग किया है। उन्होंने अपने काव्य में

सर्वत्र प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग किया है। ब्रजभाषा में रैदास ने तत्सम शब्दों का भी प्रयोग किया है।

"भक्ति न इन्द्री बांधा, भक्ति न जोग साधा, भक्ति न आहार घटाई।

भक्ति न निद्रा साधै, भक्ति न बैराग बांधे, भक्ति न सब बेद बड़ाई।

भक्ति न मूड़ मुड़ाई, भक्ति न माल दिखाई, भक्ति न चरन धुवाये।

आपो गयो तो भक्ति पाई, ऐसी भक्ति है भाई।

राम मिल्यो आपो गुन खायो रिधि–सिधि सबै गंवाई।

कहै रैदास की छूटी आस तब हरि ताहि के पास।

आत्मा थिर भई जबै, तब सबही निधि पाई।।"[10]

रैदास के काव्य में तद्भव शब्दों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। कहीं–कहीं तो भाषा में आडंबरहीन सौंदर्य स्वाभाविक रूप से द्विगुणित हो जाता है। रैदास ने बहुत ही सहज और सरल ढंग से संस्कृत के कठिन शब्दों को तद्भव का रूप दे दिया है:–

"संतो अनन भक्ति यह नाहीं।

जब लग सत रज तम पांचो गुन व्यापत हैं या माहीं।

सोई अंतर करि हरि सूं अपमारग कूं आनै।

काम क्रोध मद लोभ मोहि की पल पल पूजा ठानै।

सत्य सनेह इश्ठ अंग लागै, अस्थल अस्थल खेलै।

जो कछु मिले आन आखत त्यूं सतु दारा नहीं मेलै।"[11]

अरबी–फारसी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी रैदास ने सहजता से किया है। उस समय मुगलकाल था इसलिए इन शब्दों का प्रयोग होना स्वभाविक हैः–

"आयो आयो हो देव तुव सरना,जानि कृपा कीजै अपना जना।

मैं दाना मैं भाई साहिब मेरा, खिदमतगार बंदा में तेरा।"[12]

संत रैदास ने देशी शब्दों का प्रयोग भी बखूबी किया हैः–

"दूरि बसै शट्कर्म सकल अरू दुख कीन्हें सेऊ।

ज्ञान ध्यान धूरि दोऊ कीन्हें, दूरि छाँड़ौ तेऊ।।

पॉचौ थकित भये जहॉ तहॉ, जहॉ तहॉ थिति पाई।

जा कास मैं दौरयो फिरतो, सो अब घट में आई।।"[13]

ऐसे शब्द जो कवि की विशिष्ट अनुभूतियों को अभिव्यक्त करते हैं भावात्मक शब्द कहलाते हैं। विशेष व्यवस्था में प्रयुक्त इन शब्दों का एक विशिष्ट महत्व होता है। संत रैदास का तो समस्त काव्य ही भावप्रधान है। अतः अनेक स्थलों पर कवि ने अपने भावों को विशिष्ट शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त किया हैः–

"पीव संग प्रेम कबहु नहीं पायो, करनी कवन बिसारी।

चक को ध्यान, दधि सुत सों ज्यों हैं, त्यों तुम तें मैं न्यारी।

भोर भयो मोह एकटक जोवत, तलफत रजनी खाई।

मेटि दुहाग सुहागिन कीजै अपने अंग लगाई।

कहैं रैदास स्वामि तें बिछुरे एक पलक जुग जाई।।"[14]

नादात्मकता के लिए रैदास ने अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग किया हैः–

"हम मांनौ गुनि जोग सुनि जुगतो, महा पुरुख रे भाई।

हम मानो सूर, सकल विश–त्यागी, ममता नहीं मिटाई।।

मानौ अखिल षून्य मन षोध्यो, सब चेतन सुधि पाई।"[15]

आचार्य वामन ने दस शब्द और दस अर्थ गुण माने है[16] किंतु परवर्ती आचार्यों ने मूलतः तीन काव्यगुणों–माधुर्य, ओज और प्रसाद को ही स्वीकार किया है क्योंकि शेष उनके विचारानुसार या तो इन्हीं तीनों में समाहित हो जाते है या कुछ दोषों के अभाव के अतिरिक्त कुछ और न होने के कारण गणनीय नहीं है। इस आधार पर देखे तो रैदास के काव्य में ओज गुण तो है ही नहीं क्योंकि रैदास का प्रेम उनकी पीड़ा, अन्तःव्यथा और अंत में भक्ति के गायक कवि हैं। अतः उनके काव्य में माधुर्य और प्रसाद गुण ही प्रधान है। उदाहरणार्थः–

"वेद तें पुराण, पुराणा ते भागवत, भागवत तें भक्ति प्रकट कीन्ही।

भक्ति तें प्रेम, प्रेम ते लक्षणा, बिनु सत्संग नहीं जात चीन्ही।

...करौं डंडौत चरन पखारौं, तन मन धन उन ऊपर वारौं।

कथा कहैं अर्थ विचारैं...।

किहि विधि अब सुमिरों रे,

अति दुर्लभ दीनदयाल।

...कौन भक्ति ते रहै प्यारौ पाऊ।।"[17]

अभिधा, लक्षणा और व्यंजना में रैदास ने अभिधा को ही प्रमुखता दी है। अभिधा काव्य विषय को ग्रहणमात्र करवाती है, परंतु लक्षणा सहृदय को उसके गुणों के निकट ले जाती है। दूसरे शब्दों में लक्षणावस्तु को मूर्त रूप प्रदान करती है। प्रगाढ़ वासनात्मक और उपभोगात्मक चित्रों में कहीं–कहीं लक्षणा के दर्शन होते हैंः–

'स्वांग देखि सबहिं जग लखायो, जापान और बधाई।।

स्वांगपहर हम सांच न जान्यो, लोगन यह भरमाई।

स्वच्छ रूप सेली जब पहिरी, बोली तब सुधि आई।।

ऐसी भगति हमारी संतों, प्रभुता इहइ बढ़ाई।'[18]

काव्य के शिल्प पक्ष की दृष्टि से अलंकार, शब्द शक्ति, गुण, भाषा, छंद, बिंब योजना की दृष्टि से संत रैदास का काव्य व्यापक है। संत रैदास के काव्य शिल्प में कोमल सामंजस्य है। इनकी भाषा में झंकार, संगीत और उज्ज्वलता का समन्वय है। भाषा संबंधी अनेक व्याकरणिक दोषों के होते हुए भी काव्य का शिल्प, सौष्ठव, कोमलता–स्निग्धता और तरलता का एक आकर्षक समन्वित रूप है, उनकी शैली में कांति का गुण विद्यमान है।

अतः कहा जा सकता है कि संत रैदास के काव्य में उनका भक्ति वर्णन जितना सौष्ठवमयी है उनकी भाषा उतनी सहज, सरल और प्रभावी है।

2.3 रैदास के काव्य का वैशिष्ट्य

भक्तिकालीन समय में देश में जाति–पॉति, धर्म, वर्ण, वर्ग, पाखंड, अंधविश्वास, असमानता फैली थी। संत रैदास ने समाज में व्याप्त बुराईयों एवं कुरीतियों को समाप्त करने के लिए अत्यधिक संघर्ष किया तथा समाज को बिखरने से बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी सामाजिक चेतना निर्गुण काव्य के रूप में देखने को मिलती है जिसके द्वारा व्यक्तित्व की पहचान होती है। उनके काव्य पर निर्गुण कवियों का विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरणा लेकर अपने काव्य को अपने व्यक्तित्व से सफल बनाया। उनकी कथनी और करनी में कभी भी अंतर नहीं रहा। संत रैदास ने अपने अनुभव को ही काव्य का रूप दिया। संत में जो भी गुण होने चाहिये वे सभी गुण रैदास में विद्यमान थे जैसे– सहानुभूति, सरलता, उदारता, नियम, संयम आदि सभी विशेषता, उनके काव्य में विद्यमान थी। उन्होंने अपने काव्य में आचरण और धैर्य का परिचय दिया। उनके काव्य और व्यक्तिव में गंभीरता देखने को मिलती है। कवि रैदास का स्वभाव अंतः और बाह्य रूप से संत प्रवृत्ति का था। ये एक महान कवि के रूप में प्रसिद्ध है।

रैदास के काव्य में प्रेम भाव देखने को मिलता है। प्रेम अपने आप में एक रोमांटिक विद्रोह है जो प्रेम पर लगाई गई बंदिशों, थोथी मर्यादा और सामंती नैतिकता के विरुद्ध व्यक्ति की स्वाधीनता की मांग करता है। व्यक्ति की यही स्वाधीनता रैदास के यहां सामाजिक स्वाधीनता में रूपांतरित होकर मानव मुक्ति का संदेश देने लगती है। रैदास कहते हैः–

"बन खोजन पिउ ना मिलहिं, बन मह प्रीतम नाहिं।

रैदास पिउ है बसि रह्यो, मानव प्रेममहिं मांह।।"[19]

रैदास 'मानव मानव एक समान' के पक्षधर है। रैदास का मूल संदेश है ईश्वर के सामने सभी बराबर है और उसे पाने के लिए अब पर्वत की गुफाओं और

जंगलो में भटकने की आवश्यकता नहीं है। गृहस्थ का जीवन जीते हुए भी भगवान की भक्ति की जा सकती है।

रैदास जाति–पॉति का विरोध करते थे। उनका मानना था कि जाति के कारण ही मनुष्य–मनुष्य से दूर होता जा रहा है। वह कहते हैं कि ऐसी जाति किस काम की जिससे मनुष्य–मनुष्य में बँटवारा हो जाएः–

''जात–जात में जात है, ज्यों केलन के पात।

'रैदास' मानुष न जुड़ सकै, ज्यों लौ जाति न जात।।''[20]

अर्थात् जब तक जात–पात का भेदभाव खत्म नहीं हो जाता तब तक मनुष्य–मनुष्य से नहीं जुड़ सकता।

रैदास वर्ण व्यवस्था के पक्षधर नहीं थे उनका मानना था कि वर्णव्यवस्था होनी ही नहीं चाहिए, इसे समाप्त कर देना चाहिए। वह कहते है कि कोई भी व्यक्ति जन्म के कारण ऊँचा या नीचा नहीं होता बल्कि कर्म के आधार पर होता हैः–

''रैदास जनम के कारनै, होत न कोऊ नीच।

नर कू नीच करि डारिहैं, ओछे करम की कीच।''[21]

अर्थात ऊँचे या बड़े कुल में जन्म लेने से कोई ऊँचा या बड़ा नहीं होता बल्कि अच्छा करम करने से मनुष्य बड़ा होता है।

संत रैदास का मानना है कि सच्ची भक्ति के लिए सदाचार, सद्व्यवहार, विनम्रता, परोपकार, और शिष्टता का पालन करना चाहिए तथा अभिमान का त्याग करना चाहिए। वह कहते हैः–

कहै रैदास तेरी भगति दूरी है, भाग बड़े सो पावै।

तजि अभिमान मेहि आपा पर, पिपिलक हवै चुनि खावै।।[22]

अर्थात् रैदास चाहते थे कि मनुष्य अभिमान को त्याग कर आपस में प्रेमपूर्ण व्यवहार करे ताकि सामाजिक एकता स्थापित हो और सदैव बनी भी रहे।

रैदास की भक्ति, निश्छल और निःस्वार्थ थी। उनका मानना था कि जब हम भक्ति करे तो पूर्ण रूप से अपने इष्टदेव में लीन हो जाए। इस संदर्भ में रैदास का यह दोहा बहुत ही प्रचलित हैंः–

"अब कैसे छूटे राम नाम रट लागी।

प्रभु जी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग–अंग बास समानी।

प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवन चंद चकोरा।

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राति।

प्रभु जी तुम मोती हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा।

प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा।।"[23]

अर्थात् जब हम निःस्वार्थ भाव से भक्ति करते हैं और अपने ईष्टदेव में पूर्ण रूप से लीन हो जाते है तो हमें चारों ओर वही दिखता है।

रैदास मध्यकाल के ऐसे पहले रचनाकार है जिन्होंने सामंतो की आंतरिक गुलामी के विरूद्ध स्वाधीनता की चेतना जगाईः–

"पराधीनता पाप है जानि लेहु रे मीत।

रैदास दास पराधीन सौं कौन करै है प्रीत।

पराधीन को दीन क्या पराधीन बेदीन।

रैदास दास पराधीन को सबहि समझै हीन।"[24]

रैदास ने इस दोहे में सामंतो की गुलामी से मुक्त होने के लिए दलित समुदाय में स्वाभिमान, अस्मिताबोध, मान–सम्मान तथा आत्मनिर्भर बनने का भाव जगाया।

रैदास कर्म को ही सबसे बड़ा धर्म मानते हैं और सबसे बड़ी पूजा भी इसलिए कहते हैः–

''रैदास करम ही धरम है, करम करहु निहकाम।''[25]

रैदास का संदेश श्रमजीवी समाज को श्रमशील कर्म की ओर प्रवृत्त करता है। रैदास अपने जातिगत पेशे से जुड़े हुए कवि–कर्म में प्रवृत्त थे, न कोई कुंठा और न कोई हीनता का भाव। उन्होंने श्रमजीवी और बुद्धिजीवी का अंतर मिटाते हुए कर्मसौंदर्य का नया पाठ लिखा था जो किसी राजधर्म, वीर धर्म और क्षत्रिय धर्म वाले कर्मसौंदर्य से कहीं ज्यादा चमकदार और सार्थक था।

रैदास अच्छे साधु संत के लक्षण गिनाते है उनका मानना है कि साधु संत को निष्कपट, निश्छल, सरल मन और बाहर भीतर से स्वच्छ होना चाहिए। रैदास का स्वयं का व्यक्तित्व और स्वभाव इसी प्रकार का था, वह कहते हैंः–

''रैदास सोई साधु भलो, जो निहकपट निरपच्छ।

छमासील अरू सरल मनह, बाहर भीतर स्वच्छ।।''[26]

अर्थात् अच्छा साधु संत वही है जिसके अन्दर कपट और छल न हो जिसका मन सरल और साफ हो जो भीतर और बाहर से पवित्र हो। अतः जो किसी के भी साथ किसी भी प्रकार का छल न करें।

रैदास ऐसा समाज चाहते थे जहाँ किसी भी प्रकार का अत्याचार, भेदभाव, शोषण, भ्रष्टाचार, अन्याय आदि न हो उन्होंने शोषितो, वंचितो, पिछड़ों, अछूतो आदि लोगों के लिए समाज में समान अधिकार के लिए आवाज उठाईः–

''ऐसा चाहो राज में,
जहाँ मिलै सबन को अन्न।
छोटे बड़े सभ सम बसैं,
'रैदास' रहैं प्रसन्न।।''[27]

अर्थात् रैदास इस प्रकार का राज्य चाहते थे जहाँ छोटे बड़े का कोई भेदभाव न हो सभी लोग एक साथ मिलजुलकर रहे तथा सभी को अन्न मिले कोई भी मनुष्य भूखा न रहें।

रैदास सब का भला चाहते थे और सबकी स्वतंत्रता चाहते थे। वह स्वतंत्र चिंतक थे। विवेक मोहन संत रविदास पुस्तक में लिखते हैंः—**''संत रविदास जी प्रभु परायण, परम धार्मिक, जातिपाति के कट्टर विरोधी, मानव समान के प्रबल समर्थक, विशेष भोगादि का तिरस्कार करने वाले, सर्वहितकारी स्वाधीनता के पुजारी, स्वतंत्र चिंतक एवं उदार—उदात्त विचारों के स्वामी तथा प्रचारक महपुरुष हैं।''**[28]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास एक सबाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिसर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ0सं0, 140
2. www.ignited.in/1/a/89553
3. www.ignited.in/1/a/89553
4. www.ignited.in/1/a/89553
5. www.ignited.in/1/a/89553
6. सिंह, डॉ0 एन, रैदास ग्रन्थावली, साहित्य संस्थान प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण, 2003, पृ0सं0 140
7. सिंह, डॉ0 एन, संत शिरोमणि रैदास : वाणी और विचार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2013, पृ0सं0 158
8. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास एक सबाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिसर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ0सं0, 217
9. www.allrescarchjounal.com
10. www.allrescarchjounal.com
11. www.allrescarchjounal.com
12. www.allrescarchjounal.com
13. www.allrescarchjounal.com
14. www.allrescarchjounal.com
15. www.allrescarchjounal.com
16. www.allrescarchjounal.com

17. www.allrescarchjounal.com

18. www.allrescarchjounal.com

19. सिंह, डॉ0 एन, रैदास ग्रन्थावली, साहित्य संस्थान प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण, 2003, पृ0 सं0, 143

20. वही, पृ0 सं0, 153

21. वही, पृ0 सं0, 153

22. सिंह, इन्द्रराज, संत रविदास, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, संस्करण 1986, पृ0 सं0, 126

23. वही, 106

24. सिंह, डॉ0 एन, संत शिरोमणि रैदास : वाणी और विचार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2013, पृ0सं0 133

25. वही, पृ0सं0, 150

26. वही, पृ0सं0, 149

27. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास एक सबाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिसर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ0सं0, 38

28. विवेक, मोहन, संत रविदास, राजा पाकेट बुक्स, दिल्ली, संस्करण, 2012, पृ0सं0, 46

तृतीय अध्याय

3. सामाजिक समरसता एवं भक्तियुगीन काव्य

3.1 भक्तियुगीन काव्य का परिक्षेत्र

3.2 सामाजिक समरसता की विभिन्न ध्वनियां : जायसी, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा

तृतीय अध्याय
सामाजिक समरसता एवं भक्तियुगीन काव्य

3.1 भक्तियुगीन काव्य का परिक्षेत्र

भारतीय 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'भक्तिकाल' को जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'स्वर्ण काल' कहा है। इसका कारण यह है कि भक्तिकाल में कालजयी अमर रचनाएं रची गई हैं। ये रचनाएं हिन्दी भाषा और साहित्य की ऐसी अनुपम निधि है, जिनसे हिन्दी साहित्यकारों और अन्य लोगों को गौरव की अनुभूति होती रहेगी। श्रेष्ठ कवि संत कबीरदास की वाणी का संग्रह (बीजक), भक्त गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस', 'कवितावली', 'दोहावली', 'कृष्णगीतावली', 'विनय पत्रिका', 'वैराग्य संदीपनी', 'रामाज्ञा प्रश्न', 'रामलला नेहछू', 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल', 'गीतावली', 'बरवै रामायण'। सूरदास द्वारा रचित 'सुरसागर' तथा अष्टछाप के कृष्णभक्तों, (कुंभनदास, सूरदास, परमानंद दास, कृष्णदास, गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, नंददास) द्वारा रचित भक्ति तथा नीतिपरक साहित्य, सूफी संत मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' तथा अन्य सूफी कवियों द्वारा रचित सूफी साहित्य एवं मीराबाई की 'पदावली' आदि ग्रंथों से हिन्दी साहित्य की जो श्रेष्ठ वृद्धि हुई, उससे मानवीय भावों की पुष्टि होती है तथा भक्ति रस की ऐसी अविच्छिन्न धारा प्रवाहित होती है, जो सही अर्थों में मानव को मानव बनाने में योगदान देती है। मानवीय भावों को समुचित रूप से उद्‌बोधित करने तथा आनंदित करने में भक्तिकालीन साहित्य निश्चित रूप से अद्वितीय है। भक्तिकालीन कवियों, संतो तथा महात्माओं ने अपने साहित्य की रचना प्रमुख रूप से तो लोक कल्याण के लिए ही की, परंतु गौड़ रूप से भक्तिसाहित्य से लोगों का मनोरंजन भी किया जाता रहा। सत्य कहा जाए तो मानना पड़ेगा कि हिन्दी साहित्य से भक्तिकालीन साहित्य को निकाल दिया जाए तो ऐसा कुछ शेष बचता ही नहीं जिस पर हिन्दी–भाषी लोग गर्व कर सकें। इसलिए कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

भक्तिकाल की आरंभ में दो धाराएँ स्पष्ट रूप से हो गई थीं– निर्गुण भक्ति धारा तथा सगुण भक्ति धारा आगे चलकर इन दोनों धाराओं की भी पुन दो–दो शाखाएँ हो गई, निर्गुण भक्ति धारा में से 'ज्ञानाश्रयी शाखा' तथा 'प्रेमाश्रयी शाखा' प्रस्फुटित हुई तथा सगुण भक्ति धारा में से 'राम भक्ति शाखा' तथा 'कृष्ण भक्ति शाखा' प्रस्फुटित हुई।

3.2 सामाजिक समरसता की विविध ध्वनियाँ : जायसी, कबीर, सूर, तुलसी एवं मीरा

जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य में सामाजिक समरसता के विविध पक्ष देखने को मिलते है। इन्होंने अपने काव्य के माध्यम से हिन्दू व मुस्लिम में एकता स्थापित की है। इस सन्दर्भ में शुक्ल जी कहते हैं :–**"कबीर ने अपनी झाड़ फटकार के द्वारा हिंदुओं और मुसलमानों के कट्टरपन को दूर करने का जो प्रयास किया वह अधिकतर चिढ़ानेवाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करने वाला नहीं। मनुष्य–मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ। अपने नित्य के जीवन में जिस हृदयसाम्य का अनुभव मनुष्य कभी–कभी किया करता है, उसकी अभिव्यंजना उससे न हुई। कुतुबन, जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्यमात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय आमने–सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई।"**[1]

जायसी ने योगी रतनसेन के कठिन मार्ग के वर्णन में साधक के मार्ग के विघ्नों (काम, क्रोध आदि विकारों) की व्यंजना की है:–

"ओहि मिलान जौ पहुँच कोई।
हन हम कहन पुरुष कसोई।।
है आगे परबत कै बाटा।
विषम पहार आगम सुंठि घारा।।

बिध बिच नदी खोट औ नारा।

ठावहि ठाँव बैठ बटपारा।।''[2]

जायसी द्वारा रचित पद्मावत के संदर्भ में शुक्ल जी कहते है–**"पद्मावत में प्रेमगाथा की परंपरा पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त मिलती है। यह उस परंपरा में सबसे अधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसकी कहानी में भी विशेषता है। इसमें इतिहास और कल्पना का योग है। चितौर की महारानी पद्मिनी या पद्मावती का इतिहास हिंदू हृदय के मर्म को स्पर्श करने वाला है। जायसी ने यद्यपि इतिहास प्रसिद्ध नायक और नायिका ली है, पर उन्होंने अपनी कहानी का रूप वही रखा है जो कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय में प्रतिष्ठित था। इस रूप में इस कहानी का पूर्वार्द्ध तो बिल्कुल कल्पित है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर है।''[3]**

कबीरदास

कबीर के काव्य में अनेक रूपों में सामाजिक समरसता को देखा जा सकता है। कहा जाता है कि जहाँ प्रेम होता है वहां अत्याचार कम होता है इसलिए कबीर आपसी प्रेम व भाईचारा को महत्व देते हैं। वह कहते हैं–

''कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।

सीस उतारै हाथ करि, सो पैसे घर माहि।।"[4]

अर्थात् इस प्रेम भक्ति के दरबार में प्रवेश करने के लिए अहंकार और दंभ को छोड़ना पड़ेगा।

कबीरदास के सामने एक तरफ हिन्दू समाज था तो दूसरी तरफ मुस्लिम समाज। कबीर दोनों समाजों के धार्मिक आडम्बर एवं पाखंड के खिलाफ खड़े थे। धर्म उनके लिए एक मात्र सत्य था किंतु हिंदू–मुस्लिम धर्म में वे भेद नहीं मानते थे। वे एकेश्वरवादी थे जिसके संदर्भ में इरफान हबीब लिखते हैं–**''वास्तव में कबीर ऐसे एकेश्वरवाद की स्थापना करते हैं, जिसमें ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण तो है परंतु सारे धार्मिक अनुष्ठानों को नकारा गया है और इस तरह वह कट्टर इस्लाम से**

बहुत आगे निकल गया है। कबीर के लिए ईश्वर से एकाकार होने का अर्थ मनुष्यों का एक होना है और इसलिए वहाँ शुद्धता और छुआछूत की प्रथा को सम्पूर्ण रूप से स्पष्ट शब्दों में नकारा गया है तथा सब तरह के अनुष्ठानों को अस्वकार किया गया है।''[10]

कबीर समाज में सामाजिक समरसता की सीख देते हुए कहते है–

''क्या अजू जप भंजन कीएँ, क्या मसीत सिरूनाएं।

दिल महि कपट निवाज गुजारै, क्या हज कावै जाये।।''[5]

कबीरदास के समय में समाज में वर्णव्यवस्था जाति–भेद, छुआ–छूत का जबरदस्त बोलबाला था। कबीर ने उसका खुलकर विरोध किया है। वे कुल परिवार की श्रेष्ठता के आधार पर अपने को श्रेष्ठ मान लेने वालो पर तीखा व्यंग करते हैं–

''ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जै करणी ऊँच न होई।

सौवन कलस सुरे भरया, साधू निद्या सोई।।''[6]

सूरदास

सूरदास के काव्य में हमें अनेक स्थानों पर सामाजिक समरसता देखने को मिलती है सूरदास ने कृष्ण के माध्यम से सामाजिक समरसता को दर्शाया है। वैसे तो सूरदास मूलतः प्रेम के कवि हैं। उनके काव्य का मूल आधार श्रृंगार और वात्सल्य है। उन्होंने कृष्ण की चंचल क्रीड़ाओं और युवा कृष्ण के श्रृंगार के संजीले चित्रों की एक पूरी प्रदर्शनी ही संजो दी है। निसंदेह उन्होंने अपने अराध्य श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के कतिपय विशिष्ट पक्षों के भीतर ही झांका है किंतु इन दोनों पक्षों में से कुछ भी ऐसा नहीं रहा जो उनकी कविता का हिस्सा न बना हो सूरदास भावनाओं के कवि हैं। उन्हें मानवीय व्यवहारों की पूरी और सही पहचान है।

सूर ने सामाजिक समस्याओं पर कविताएँ तो नहीं लिखी हैं परंतु सामाजिक समस्याओं पर चोट अवश्य की है। सूर के समय में एक बड़ी समस्या धर्म के क्षेत्रे में निर्गुण मार्ग व सगुण मार्ग के आतंक की थी। सूर ने भ्रमरगीत की कथा को बदलकर उद्धवगोपी संवाद को निर्गुण–सगुण शास्त्रार्थ में रूपातंरित कर दिया और अंत में ग्रामीण तथा अनपढ़ गोपियों द्वारा महाज्ञानी उद्धव को पराजित कराकर सगुण व सरल भक्ति की स्थापना की। गोपिया पूर्ण आत्मविश्वास से कहती हैः–

''उर में माखन चोर गड़े

अब कैसेहुँ निकसत नांहि, तिरछे हैं ज्यों अड़े?''[7]

आगे वे कहती हैंः–

''निरगुन कौन देश की बासी।

को है जनक, जननि को कहियत कौन नारि को दासि।''[8]

सूरदास की कविता सामंतवादी युग में सामाजिक समानता का भाव भी स्थापित करती है। कृष्ण ब्रज के राजकुमार है जबकि ग्वालों की सामाजिक, आर्थिक हैसियत का अंतर संबंधों में साफ झलकता है। सूरदास के कृष्ण और ग्वालों के समतामूलक संबंध के माध्यम से वर्गीय समानता का भाव स्थापित किया है। ग्वाले पूरी आजादी के साथ कृष्ण से कहते हैं :–

''खेलन में को काको गोसेयाँ

हरि हारे जीतें श्रीदामा बरबस ही कत करत रिसैयाँ।

जाति–पाति हम से बड़ी नाहि, नाहि बसत तुम्हारी छैया।

अति अधिकार जतांवत याते, जाते अधिक तुम्हारी गैया।''[9]

सूरदास का काव्य प्रभाव के स्तर पर भी लोकमंगलकारी है। एक ओर वह अपने काव्य में गोपियों के माध्यम से नारी–मुक्ति की प्रस्तावना करते हैं तो दूसरी

तरफ उनका संपूर्ण काव्य सामाजिक संक्रमण के दौर से गुजर रहे व्याकुल समाज के मन को आनंदित करता है।

मध्यकालीन समाज के सामंतवादी और पुरुष प्रधान ढांचे को गोपियाँ सिरे से नकारती है और कृष्ण–प्रेम को दर्शाती हुई अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करती है :–

''लरिकाई को प्रेम कहौ अलि कैसे छूटै''[10]

आगे वे कहती हैः–

''ऊधो कोकिल कूजत कानन।

तुम हमको परदेस करत हो, भस्म लगावत आनन।''[11]

सूरदास की इन पंक्तियों से प्रतीत होता है कि सूरदास की गोपियां पूर्णतः स्वतंत्र है तथा स्त्री–पुरुषों में कोई भेद नहीं है। वह निःसंकोचता से अपने प्रेम का बखान करती हैं।

तुलसी

तुलसी जी के काव्य में हमें बड़े स्तर पर सामाजिक समरसता देखने को मिलती है। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संदर्भों में तत्कालीन समस्याओं को उजागर किया है। 'तुलसीदास' के साहित्य में लोक परंपरा, वैश्विक दृष्टिकोण और लोक कल्याण के ढेर सारे आयाम लक्षित हुए है। जहाँ तक ज्ञात है तुलसी के राम जिस लोक में प्रतिष्ठित हुए है, वह समय भारतीय समाज के विकट स्थिति में से एक है। तुलसीदास ने कलयुग के माध्यम से विषमता से ग्रस्त समाज का चित्रण किया है। साथ ही तुलसीदास ने जाति, धर्म आदि सभी पक्षों में समन्वय व एकता स्थापित की है। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा का कथन हैः– **''भक्ति–आंदोलन अखिल भारतीय सांस्कृतिक आंदोलन था। इस आंदोलन की श्रेष्ठ देन थे तुलसीदास उन्होंने निर्गुणपंथियों और संगुण मतावलम्बियों को एक किया, उन्होंने वैष्णवों और शाक्तों को मिलाया। उन्होंने भक्ति के आधार पर, जनसाधारण**

के लिए धर्म को सरल एवं सुलभ बनाकर पुरोहितों के धार्मिक एकाधिकार की जड़े हिला दी। तुलसीदास मानवीय करूणा के अन्यतम कवि हैं। उनके राम दीनबंधु है। 'सबरी गीध सुसेवकनि, सगुति कीन्ह रघुनाथ' वनवासी कोल किरात राम के दर्शन से प्रसन्न होते है। 'अभीर जवन किरात खस स्वपयादि' सभी राम के स्मरण से मोक्ष–लाभ करते हैं।''[13]

राम और निषाद आपस में जिस आत्मीय शैली में बात करते है। वह जाति–पॉति, ऊँच–नीच सभी बंधनो को तोड़ देती है ऐसे में भरत को ज्ञात होता है कि निषाद राम का सखा है इसलिए लक्ष्मण भी निषाद को हृदय से लगाकर राम के समान भेंट करते हैं:–

''राम सखा सुनि स्यदनु त्यागा।

चले उतरि उमगत अनुरागा।

गाउँ नति गुहँ नाउँ सुनाई।

कीन्ह जोहारू हाथ महिलाई।।

करत दंदुवत देखि तेहि भरत उर लीन्ह लाइ।

मनहुँ लखन सन भेंट भई प्रेम न हृदय समाई।।''[14]

निषाद शूद्र था परन्तु राम ने उनके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार किया इससे सिद्ध होता है कि कर्मनिष्ठ व्यक्तियों का सम्मान सदैव ही रहा है। वहाँ जाति–वर्ग सब कुछ वस्तुनिष्ठ हो जाता है, व्यक्ति ही श्रेष्ठ हो जाता है, चाहे वह किसी वर्ग, जाति, समुदाय का हो।

इसी प्रकार शबरी भी शबर जाति की स्त्री है वह भी अधम 'तिन्ह महं मैं मति मन्द अधारी है' लेकिन राम उसका अतिशय स्वीकार करते है, शबरी को भी भामिनी, करिवर गामिनी कहकर सम्बोधित करते है। साथ ही राम बंदर, भालूओं को भी

अपना सहभागी बनाते है और उनकी मदद से अन्याय पर विजय प्राप्त करते हैं। इस संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी का मत है किः—**''तुलसी के राम उन लोगों के प्रिय हैं जो साधनहीन है, जिन्हें बड़े–बड़े लोग छोटा या नीचा समझते है, जिनकी वे उपेक्षा करते है, अहल्या, ग्रामीण नर–नारियों, केवट, कोल किरात, शबरी, गीध, बन्दर, भालुओं से राम की आत्मीयता पर गौर करने से राम का दीनबन्धु एवं पर दुःख कातर रूप सामने आता है। अहल्या अपने पति द्वारा परित्यक्ता थी। पति बहुत बड़े मुनि थे लेकिन अपनी पत्नी की गलती को माफ नहीं कर पाए थे। राम ने उसे पावन किया। साधनहीन बंदर, भालुओं का महत्व राम ने समझा उन्हें राम ने अपना सखा और सहायक बनाया। आज की उपेक्षिता सामान्य जनता की भाँति में बंदर, भालू भी अपनी क्रांतिकारी भूमिका और अपनी छिपी शक्ति को भूल बैठे थे।''**[15]

अतः तुलसीदास मात्र एक वर्ग एक समुदाय का उदार ही नहीं करते अपितु समस्त जनमानस का कल्याण चाहते थे तुलसीदास उन समुदायों को भी बड़े गौरव के साथ अपनी कृतियों के पात्रों में उल्लेख करते है जो समाज के उस किनारे पर है जहाँ उनका कुछ नहीं है परंतु राम का साथ पाकर पूरे संसार में प्रकाशित हो जाते हैं।

शूद्रो का भारतीय समाज में अत्यंत निम्न स्थान था। उनकी छाया मात्र पड़ जाने से ब्राह्मण को स्नान करना पड़ता था। ऐसे में श्रीराम उनके यहाँ निवास करते हैं, जूठे फल खाते है। यह उदारता नहीं है व्यवहार है जो मानव का मानव से होता है। इसी व्यवहार ने राम को भगवान से मानव का वह रूप दिया, जो सत्यनिष्ठ भी है, और समन्वयवादी भी।

मीरा

मीरा की भक्ति भावना माधुर्य भाव की है। मीरा के सम्पूर्ण काव्य में कृष्ण के प्रति मधुरभक्ति देखने को मिलती है। मीरा ने स्वयं को कृष्ण की स्वकीया पत्नी

मानकर कृष्ण की मधुर प्रेम–लीलाओं का वर्णन किया है। 'मीरा पदावली' के अंतर्गत माधुर्य भाव के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का बड़ा ही अद्‌भुत चित्रण है।

संयोग पक्ष

मीरा के नैनों और ह्रदय में बाल्यावस्था से ही लीला पुरूषोत्तम श्रीकृष्ण बस गए थे वह कहती हैः–

''बस्याँ म्हारे णेणण माँ नण्दलाल

मोर मुकुट मकराक्रत कुंडल अरूण तिड़क शोहे माड़।

मोहण मूरत सावरों शूरत णैठां बण्या बिशाड़।

अधर सुधारस मुरड़ी राजाँ उरू बैजण्ता माड़।

मीराँ प्रभु सुखदायी भगत बछड़ गोपड्।''[16]

वियोग पक्ष

मीरा के काव्य में अधिकांशतः विरहानुभूति देखने को मिलती है। विरह की तीव्र अनुभूति और प्रचुरता के कारण मीरा के पदों में बड़ी मर्मस्पर्शी पीड़ा पाई जाती है। विरह में मीरा की हालत ऐसी हो जाती है कि वह अपने रंग महल में बैठकर मोतियों के बदले आशुओं की माला पिरो रही है। वह कहती हैं–

''मैं विरहन बैठी जागूँ जगत सब सोवैरी अली।

विरहन बैठी रंग महल में मोतियन की लड़ पोवै।

इक तिरहिन हम ऐसी देखी अंशुवन की माला पोवै।''[17]

सौंदर्य पक्ष :–

मीरा के काव्य में उनके (मीरा) के सौंदर्य के साथ–साथ उनके गिरधर गोपाल का व्यक्तिपरक सौंदर्य भी देखने को मिलता है। मीरा ने अपने प्रियतम के लौकिक रूप के साथ–साथ अलौकिक रूप–सौंदर्य का भी चित्रण किया है। मीरा ने संसार के सौंदर्य को क्षणिक और नश्वर बताया है फिर भी वह उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। इसी कारण उनके काव्य में लौकिक सौन्दर्य की अनुभूति देखने को मिलती हैः–

"म्हारो मन हर लीनौ रणछोड़।

मोर मुगट सिर छत्र बिराजै कुंडल री छब ओर।

चरण परवारयाँ रतणाकर री धरा गोमत जोर।

धजा पताका तट तट राजै झालर री झकझोर।

भगत जणां रा काज संवारया म्हारा प्रभु रणछोर।

मीरा रे प्रभु गिरधर नागर कर गहयो नंद किसोर।"[18]

मानवतावादी दृष्टिकोण

मीरा की वेदना हमें स्वयं की वेदना नजर आती है। मीरा के काव्य ने भारतीय जन मन को ही नहीं बल्कि पूरे विश्व के भक्त–हृदय को अविभूत किया है। मीरा का दुःख सर्वथा उनका अपना होते हुए भी मानव मात्र का दुःख है। उनकी वेदना जीवमात्र की वेदना है। वह कहती हैंः–

"हरि तुम हरो जन की पीर।

द्रौपदी की लाज राखी तरंग बढ़ायो चीर।"[19]

रहस्यात्मकता

मीरा के काव्य में रहस्यवाद भी देखने को मिलता है। लौकिक से अलौकिक सत्ता की ओर उन्मुख होना ही काव्य में रहस्यवाद है। मीरा ने अपनी प्रेमभक्ति में नवधा भक्ति का भी सुन्दर समावेश किया है। वियोगिनी मीरा की लगन परब्रह्म से लगी है। इसी गगन मण्डल में रहने वाले अपने प्रियतम की सेज का वर्णन करती हुई मीरा कहतीं हैंः–

''सूली ऊपर सेज हमारी किस विध सोण होय।

गगन मण्डल पे सेज पिया की किस विध मिलवा होय।''[20]

कल्पना शक्ति

मीरा की कल्पना शक्ति बेशुमार है। उसके मनोजगत एवं भावजगत पर उस अलौकिक पुरूष से प्रतिपल होने की कल्पना उसकी चेतना को सींचती रहती है और उसी के बलबूते वह अपने जीवनपथ पर अविरत गति से चलती रही है प्रियतम से मिलने की कल्पना ही उसके जीवन की सबसे बड़ी धरोहर है। इसलिए वह कहतीं हैंः–

''म्हां गिरधर रंग राती

पंचरंग चोला पहेरया सखी म्हां झरमट खेलण जाती।

बा झरमट मां मिल्या सांतरा देख्या तन मन राती।

जिवरे पिया परदेश बसैरी लिखलिख भेजे पाती।

म्हारा पिया म्हारे हिवड़ बसतां ना आवां ना जाती।

मीरा रे प्रभु गिरधर नागर मग जोबां दिन राती।।''[21]

प्रकृति चित्रण

मीरा के काव्य में प्रकृति–चित्रण बखूबी देखने को मिलता है मीरा ने प्रकृति के वर्षा ऋतु का अधिक वर्णन किया है। कुछ पद बारहमासा के रूप में भी मिलते है इनमें ग्रीष्म आदि ऋतुओं का भी समावेश है। वर्षा के मादक माहौल ने मीरा के हृदय को बार–बार आलोकित किया है। वह कहतीं हैं:–

''बरसे री बदरिया सावण री, सावण री मणभाषण
सावण में उभग्यो म्हारो मनड़ो भणक सुणी हरि आवण री।
उमड़–उमड घन मेघा आया दामण घणझर लावण री।
बीजा बूंदा मेहा बरसै सीतल पवण सुहावण री।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर बेला मंगल गावण री।।''[22]

अतः मीरा का काव्य मूलतः भाव–पक्ष पर आधारित है मीरा की भक्ति हृदय की है ज्ञान की नहीं। मीरा की भक्ति न किसी सम्प्रदाय से संबंधित है और न ही किसी भी प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक बंधनों को स्वीकार करती है। मीरा की भक्ति का एकमात्र लक्ष्य अपने साँवरिया को पाने की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृ0सं0, 92–93

2. वही, पृ0सं0, 96

3. वही, पृ0सं0, 93

4. मिश्र, शिवकुमार, भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2010, पृ0सं0, 77

5. दास, श्यामसुन्दर, कबीर ग्रन्थावली, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2011, पृ0सं0, 85

6. तिवारी, पारसनाथ, कबीर ग्रन्थावली, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2011, पृ0सं0, 103

7. दास, श्यामसुन्दर, कबीर ग्रन्थावली, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2011, पृ0सं0, 85

8. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मथुरा पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1973, पृ0सं0, 190

9. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृ0सं0, 148

10. नवल, नंदकिशोर, सूरदास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013, पृ0सं0, 36

11. शुक्ल, रामचन्द्र, भ्रमर गीत सार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2011, पृ0सं0, 76

12. वही, पृ0सं0, 97

13. तिवारी, अजय, तुलसीदास एक पुनर्मूल्यांकन, आधार प्रकाशन, हरियाणा, प्रथम संस्करण–2006, पृ0सं0, 46

14. तुलसीदास, रामचरित मानष, गीताप्रेष गोरखपुर, 100वाँ–पुर्नमुद्रण, पृ0सं0, 458

15. त्रिपाठी, विश्वनाथ, लोकवादी तुलसीदास, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2007, पृ0सं0, 34

16. www.ijrra.net/Vol2issue1/IJRRA-02-01-32.pdf

17. www.ijrra.net/Vol2issue1/IJRRA-02-01-32.pdf

18. www.ijrra.net/Vol2issue1/IJRRA-02-01-32.pdf

19. www.ijrra.net/Vol2issue1/IJRRA-02-01-32.pdf

20. www.ijrra.net/Vol2issue1/IJRRA-02-01-32.pdf

21. www.ijrra.net/Vol2issue1/IJRRA-02-01-32.pdf

22. www.ijrra.net/Vol2issue1/IJRRA-02-01-32.pdf

चतुर्थ अध्याय

4. सामाजिक समरसता एवं रैदास की कविता

4.1 रैदास के काव्य में सामाजिक समरसता का स्वरूप

4.2 रैदास के काव्य में सामाजिक समरसता का वैशिष्ट्य

चतुर्थ अध्याय
सामाजिक समरसता एवं रैदास की कविता

4.1 रैदास के काव्य में सामाजिक समरसता का स्वरूप

रैदास के काव्य को यदि हम ध्यानपूर्वक देखे तो, उनके संपूर्ण काव्य में सामाजिक एकता, मानवतावादी, श्रम के मूल की पहचान और सर्व–धर्म समभाव देखने को मिलता है। निर्गुण काव्यधारा में अनेक संत हुए जो समाज में व्याप्त बुराईयों से लड़ते रहे। रैदास श्रम रूपी कर्म को करते हुए अपनी कविता के माध्यम से श्रम को चंदन की तरह सुगंधित करते हैं और अपनी वाणी से पानी की तरह प्रेम पूर्वक संसार को शीतलता प्रदान करते हैं। रैदास की साधना श्रम में ही है। वह श्रम की साधना में तल्लीनता, मन मंदिर में वाणी और कर्म के चंगा होने की बाते करते हैं। अगर मन की साधना पवित्र है तो श्रम रूपी वाणी कर्म की प्रधानता को **'मन चंगा तो कठोती में गंगा'** जैसा पवित्र बना देता है। श्रम करते रहने से समस्याओं का समाधान होता रहता है और समस्याओं के उत्पन्न होने की संभावना भी कम रहती है।

रैदास बाह्य–आडंबर के पक्षपाती नहीं रहे वह तो अपने अंदर ही झांकने को बोलते है उनका मानना है यदि हमारा मन साफ है उसमें कोई छल–कपट नहीं है तो सब बढ़िया है। हमारा मन पवित्र होना चाहिए मथुरा द्वारिका काशी हरिद्वार जाने से कुछ नहीं होगा यदि हमारा मन ही पवित्र नहीं है तो इसलिए रैदास कहते है :–

''का मथुरा का द्वारिका, का कासी हरिद्वार।

रैदास खोजा दिल अपना, तऊ मिलिया दिलदार।।''[1]

समाज में सामाजिक समरसता बनाए रखने के लिए नैतिकता भी जरूरी है इसलिए रैदास नीति की बात भी करते हैं क्योंकि रैदास ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज की यह मान्यता है कि जो व्यक्ति गलत इन्सान के साथ रहता है वह भी

गलत कहलाता है। इसलिए गलत इन्सान के साथ नहीं रहना चाहिए। रैदास कहते है:–

''जो जन दुष्ट कुमारगी, बइठहिं नंहि तिंह पास।

जो जन संत सुमारगी, तिन पांय लागो रैदास।।''[2]

इस प्रकार रैदास ने तत्कालीन समाज की परिस्थितियों को आत्मसात करके उनको समझा और अपनी वाणी में उन समस्याओं का एक व्यावहारिक समाधान, नैतिकता को बताकर उस काल के सर्वश्रेष्ठ साधन के रूप में बताया। वह एक आदर्श भक्त एवं एक विचारक के साथ–साथ तत्कालीन समाज के एक बहुत बड़े समाज–सुधारक भी थे। जिनकी वाणी ने समाज को एक समाधानपूर्ण विचार–धारा दी जो सामाजिक परिवर्तन लाने में सफल हो सकें।

समाज में सामाजिक समरसता को बनाए रखने के लिए जरूरी है कि सभी मनुष्य एक दूसरे को अपने समान माने तथा कोई भी मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य से किसी भी प्रकार का भेदभाव न करे। इसलिए रैदास समानता की बात करते है। वर्ग और नस्लीय श्रेष्ठता के आधार पर मनुष्य मनुष्य में भेद करने वाली हिंसक–प्रवृत्ति को मानने वालों को रैदास मूर्ख और अज्ञानी मानते हैं। रैदास का मानना है कि सब एक ही माटी के बने है और सबका कुम्हार एक ही है। वह कहते है:–

''एकै माटी के सभे भांड़े, सभ का एकौ सिरजन हारा

'रैदास' व्यापै एकौ घर भीतर, सभ का एकै घड़े, कुम्हारा।''[3]

रैदास के काव्य में भक्ति की अवधारणा बिल्कुल भिन्न हैं। यहाँ भक्त और भगवान का मिलन नहीं है, क्योंकि ऐसा मिलन असत्य से सत्य का और अभाव से भाव का मिलन है। रैदास के यहाँ सत्य से सत्य का, भाव से भाव का और मनुष्य से मनुष्य का मिलन है। अपने अंदर के मनुष्य से साक्षात्कार ही निर्गुण–प्रेम है। इसी से आदमी और आदमी के बीच समता और स्नेह स्थापित होता है। इसी से

आदमी ऊपर उठता है रैदास भगवान के दरबार में समता नहीं चाहते, बल्कि समाज में समता चाहते हैं। इसलिए रैदास कहते है।

"अबरन करन रूप नहिं जाके,

का कहि देउं बढ़ाई।।"[4]

सामाजिक समरसता तभी स्थापित हो सकती है जब लोगों के भीतर प्रेम भावना और श्रम के प्रति लगन हो। इसलिए रैदास कहते हैं, प्रेम की भक्ति अर्थात भ्रातृत्व और श्रम–साधना अर्थात् संघर्ष जिस मनुष्य में है वही सफल है। वह लौकिक भक्ति है जिसे रैदास स्थापित कर रहे थे रैदास कहते हैंः–

"प्रेम भगति श्रम साधना जग यह जिन्हहि पास।

तिनहि जीवन सफल हे, संत भाषै रैदास।।"[5]

आगे रैदास कहते है कि प्रेम भक्ति किसी से घृणा नहीं सिखाती, बल्कि सबको अपना मीत बनः–

"जिन देखे घिन ऊपजै नरक कुंड में वास।

प्रेम भगति से ऊधरे प्रगटत जन रैदास।।"[6]

रैदास अपने समय के सबसे बड़े भौतिकवादी विचारक कवि थे। उनकी धर्म की अवधारणा मनुष्य आधारित है, न कि जाति–आधारित। रैदास कहते हैंः–

"धरम की कोई जाति नहिं, न जाति धर्म के माहि।

रैदास सो चले धरम पर, करेंगे धरम सहाय।।"[7]

रैदास ने जिस समतामूलक समाज की कल्पना की है, उसमें पूर्णतः सामाजिक समरसता झलकती है। रैदास कहते हैः–

''रैदास जु है बेगमपुरा, उह पूरन सुखधाम।

दुख अदोह अरू देष भाव, नाहि बसहिं तहिं ठाम।।[8]

आगे रैदास कहते हैः–

''ऐसा चाहूँ राज मैं, जहां मिले सबन को अन्न।

छोट बड़े सब सम बसें, रैदास रहे प्रसन्न।।''[9]

'बेगमपुरा' रैदास के सपनों का समतामूलक ऐसा समाज है जिसमें किसी को किसी प्रकार का गम नहीं है, ऐसा संपूर्ण समाज जो सुख का धाम है, जहाँ दुःख, अदोह, ईर्ष्या–द्वेष आदि के लिए कोई स्थान नहीं हैं दूसरे दोहे में रैदास ऐसे राज्य की कल्पना करते हैं जहाँ आपसी भाईचारा हो, कोई छोटा–बड़ा न हो, अन्न के अभाव में कोई भूखा न रहे। 'छोटे बड़े सब सम बसे' तथा 'मिले सबन को अन्न' जैसी पंक्तियाँ सामाजिक और आर्थिक मुक्ति को दर्शाती हैं।

वेद, शास्त्र व पुराणों की रचना मानव को धर्म की शिक्षा देने के लिए हुई थी। पर दुर्भाग्यवश समय के फेर व अज्ञानता के कोहरे ने इन ग्रन्थों को समाज में प्रकाश फैलाने की बजाय कटुता व भेद–भाव का स्रोत बना दिया। रैदास ने ऐसे ग्रंथों के आधार पर समाज को तोड़ने वाले मनुष्यों को शिक्षा दीः–

''चारिव वेद कियौ खंडौति,

जन रैदास करो, दंडौति।।''[10]

4.2 रैदास के काव्य में सामाजिक समरसता का वैशिष्टय

सामाजिक समरसता की बात तो कबीर भी करते है परंतु कबीर में अक्खड़पन नजर आता है। वह हिंदुओं की देव मूर्ति को एकदम से पत्थर कह देते हैं:–

"पाठर पुजे हरि मिलै तो मैं पूजू पहार

ताते या चाकी भलि पिसि खाए संसार।।"[11]

इससे हिन्दू भक्तो की भावना को ठेस पहुँच सकती है क्योंकि वह जिन देवताओं के प्रति श्रद्धा रखते है उनको कोई एकदम से पत्थर बोल दे यह भक्त लोग कैसे बरदास्त कर सकते है। साथ ही कबीदास मुसलमानों को फटकारते हुए कहते है:–

"काकर पाथर जोर कै मस्जिद लई बनाए

ता चड़ि मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुया खुदाय।।"[12]

यहाँ पर मुसलमानों की भावनाओं को ठेस पहुँच सकती है क्योंकि उनके खुदा को कोई बेहरा बोल दे यह मुस्लिम भक्त कैसे स्वीकार कर सकते है। उनकी तो अपने खुदा के प्रति अटूट श्रद्धा है।

वहीं जब हम रैदास का काव्य देखते है तो उनका स्वभाव बहुत ही विनम्र है हिन्दू–मुस्लिम एकता की बात रैदास भी करते है, परंतु बहुत ही विनम्र स्वभाव से। इसलिए रैदास के काव्य में जो सामाजिक समरसता पाई जाती है वह विशेष है। रैदास हिन्दू व मुस्लिम दोनों में एकता स्थापित करने के लिए कहते है:–

"मुसलमान सौ दोस्ती हिन्दुअन सौ कर प्रीत

रैदास जोति सभ राम की, सभ हैं अपने मीत।"[13]

अर्थात् रैदास बड़े ही विनम्र स्वभाव से हिन्दू व मुस्लिम से दोस्ती व प्रेम करने के लिए कहते है। आगे रैदास मुसलमानों की मस्जिद व हिन्दुओं के मंदिर के बारे में भी बहुत प्रेमपूर्ण स्वभाव से कहते है :–

''मस्जिद सो घिन नहीं, मंदिर सो नहीं प्यार।

इनमे अल्लाह राम नहीं, कह 'रैदास' विचार।।''[14]

अर्थात् वह कहते है कि मस्जिद से कोई घृणा नहीं है न ही मंदिर से कोई प्यार है, इन दोनों में ही अल्लाह और राम नहीं रहते है बल्कि अल्लाह और राम तो हमारे खुद के अंदर है। यदि हम सब लोगों के साथ भाईचारा, और प्रेमपूर्ण व्यवहार करे तथा किसी के हृदय को ठेस न पहुँचाए साथ ही सभी के सुख–दुःख में साथ दे तो इससे बड़ी भक्ति क्या होगी?

भारत में हिन्दू समाज की सामाजिक व्यवस्था चतुवर्ण्य व्यवस्था रही हैं इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्ण है। रैदास ने इस पूरी व्यवस्था को नकारा है। उन्होंने अपनी अनुभूति व ज्ञान गाम्भीर्य से तथाकथित चतुवर्ण्य व्यवस्था को नये कलेवर में पारिभाषित किया। उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चारों की नवीन परिभाषा दी जो सनातनी व्याख्या से अलग है। रैदास द्वारा दी गई इन चारों वर्णों की परिभाषाओं मनुस्मृति में दी गई परिभाषायों से पूरी तरह भिन्न है। डॉ सुभाष चन्द्र इस सन्दर्भ में कहते हैः–**''रविदास ने वर्ण के कर्तव्यों को पुनर्परिभाषित किया। उसे इस तरह से व्याख्यायित किया जिससे कि पीड़ित व्यक्ति का पक्ष ही मजबूत होता था। मनुस्मृति के वर्ण संबंधी कार्यों में क्षत्रिय उसी को कहा गया जो राज्य की रक्षा करता है या जो शासन करता है। लेकिन रविदास ने उसी को सच्चा क्षत्रिय कहा जो दीन–दुखी के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर सकता है। केवल भुजाओं में ताकत होने मात्र से किसी को क्षत्रिय नहीं कहा जा सकता, बल्कि उस ताकत का प्रयोग दीन–दुखियों के लिए करने वाले को ही कहा जा सकता है।''**[15]

इसी प्रकार रैदास ने ब्राह्मण और वैश्य के लिए भी मानवीय गुणों को प्राथमिकता देते हुए वर्ण–व्यवस्था के आधार को ही सुसंगत रूप देने का महत्वपूर्ण कार्य किया। रैदास कहते हैः–

मनुस्मृति के अनुसारः–

ब्राह्मण कौन है?

पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, दान देना, दान लेना, ये छः ब्राह्मणों के रचे।

मनुस्मृति (1–88)

रैदास के अनुसारः–

ब्राह्मण कौन है?

''काम क्रोध, मद लोभ तजि, करत धरम का कार।

सोई ब्राह्मण जानहि, कहि रविदास चमार।।''[16]

मनुस्मृति के अनुसारः–

क्षत्रिय कौन हैं?

प्रजा की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना पढ़ना और विषयों में न लगना ये क्षत्रिय के कर्म संक्षेप से बनाए।

मनुस्मृति (1–89)

रैदास के अनुसारः–

क्षत्रिय कौन है ?

''दीन–दुखी के हेत जो वारे अपने प्राण।

रविदास उह नर सूर को सच्चा क्षत्री जान।''[17]

मनुस्मृति के अनुसारः–

वैश्य कौन है?

पशुओं की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार, ब्याज और खेती कर्म वैश्य के बनाए।

मनुस्मृति – (1–90)

रैदास के अनुसारः–

वैश्य कौन है?

''सांची हाठी बैठकर, सौदा सांचा दे।

तकरी तोल सांच की रविदास वैस है सोय।''[18]

मनुस्मृति के अनुसारः–

शूद्र कौन है?

प्रभु ने शूद्र को एक ही कर्म कहा है वह इन तीनों वर्णों की निष्कपट होकर सेवा करें।

मनुस्मृति – (1–91)

रैदास के अनुसारः–

शूद्र कौन है?

''रविदास जो अति पवित्त है सांई सूदर जान।

जऊ कुकरमी असुध जा तिन्हहि न सूदर मान।।''[19]

रैदास सामाजिक समरसता चाहते थे इसलिए उन्होंने मानवीय गरिमा व स्वतंत्रता को विशेष महत्व दिया है। रैदास द्वारा दी गई वर्ण–व्यवस्था की

परिभाषाओं से देखा जा सकता है कि जहाँ मनुस्मृति ने ब्राह्मण के कर्म पढ़ने और पढ़ाने, यज्ञ करने, दान देने, दान लेने के बताए हैं, वहीं रैदास ने उनके काम, क्रोध, मद और लोभ को तजने के चारित्रिक बल पर जोर दिया है। क्षत्रिय के बारे में मनुस्मृति में कहा गया है कि उसका कर्म प्रजा की रक्षा, दान देना, यज्ञ कराना, पढ़ना और विषयों में न लगना ये क्षत्रिय के कर्म बताए है, लेकिन रेदास कहते है क्षत्रिय का कर्म दीन दुखियो की रक्षा करना है। मनुस्मृति में वैश्यों के लिए दान, यज्ञ, व्यापार, ब्याज और खेती, उसके कर्म बताए है। लेकिन रैदास का मानना है कि वैश्य वही है जो सच्ची तराजू पर सच्चा सौदा दे जहाँ मनुस्मृति में शूद्रो का एकमात्र कर्म बाकी तीनों वणों, (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) की सेवा बताया गया है। वहीं रैदास ने कहा है कि शूद्र वही है जो सबसे अधिक पवित्र है। ऐसा कह कर रैदास वर्ण व्यवस्था का समर्थन नहीं कर रहें हैं, उन्होंने वर्ण व्यवस्था की शब्दावली का इस्तेमाल तो किया है, लेकिन वह मात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की परिभाषा बता रहे हैं, जो जन्म के आधार पर नहीं है। इसलिए उन्होनें स्पष्ट कहा है कि–

''जन्म जात कूं छाड़ि करि, करनी जात परधान।

इह्यों वेद को धरम है, करै 'रैदास' बखान।।''[20]

रैदास किसी भी जाति के पक्षधर नहीं थे। वह तो जाति को ही पूर्णतः समाज से समाप्त करना चाहते थे इसलिए वह जाति को एक रोग बताते है वह भी ऐसा रोग जो मनुष्यता को खा जाता हैः–

''जात पात के फेर मंहि, उरझि रहइ सब लोग।

मानुषता कूं खात हई, 'रैदास' जात का रोग।।''[21]

रैदास मनुष्यता के पक्षधर थे। उनका समस्त चिंतन मनुष्यता के विकास के लिए तत्पर दिखाई देता है। वे भक्ति की शास्त्रीय परंपरा के बजाय उसको सहज रूप में ग्रहण करते हैं। उन्होंने भक्ति को मानवीय प्रेम रूप में प्रयुक्त किया है। आज के समय में भारतीय समाज भाषायी, जाति व क्षेत्र के आधार पर, कहीं हिन्दू राष्ट्र के नाम पर तो कहीं इस्लामी जिहाद आदि आधारों पर जातिगत वैमनस्य फैला

हुआ है। आज संत रैदास की ये बातें सामाजिक समरसता और सहअस्तित्व के लिए पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास का एक सवाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिशर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ0 सं0 283

2. वही, पृ0 सं0, 169

3. सिंह, डॉ0 एन, संत शिरोमणि रैदास : वाणी और विचार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2013, पृ0सं0 138

4. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास का एक सवाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिशर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ0 सं0 34

5. वही, पृ0 सं0, 175

6. वही, पृ0 सं0, 170

7. वही, पृ0 सं0, 167

8. सिंह, डॉ0 एन, संत शिरोमणि रैदास : वाणी और विचार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2013, पृ0सं0 157

9. वही, पृ0 सं0, 159

10. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास का एक सवाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिशर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ0 सं0 253

11. त्रिवेणी, डॉ0 हरिहर, डॉ0 मण्डन, त्रिवेदी, कबीरःजीवन वृत्त एवं व्यक्तित्व, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2001, पृ0सं0, 26

12. वही, पृ0 सं0, 26

13. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास का एक सवाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिशर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ0 सं0 94

14. सिंह, डॉ0 एन, संत शिरोमणि रैदास : वाणी और विचार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2013, पृ0सं0 140

15. चन्द्र, डॉ सुभाष, दलित मुक्ति की विरासत–संत कवि रविदास, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, संस्करण, 2012, पृ0 सं0, 50

16. वही, पृ0 सं0, 46

17. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास का एक सवाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिशर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ0 सं0 154

18. वही, पृ0 सं0, 154

19. वही, पृ0 सं0, 154

20. सिंह, डॉ0 एन, रैदास ग्रन्थावली, साहित्य संस्थान प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण, 2003, पृ0सं0 153

21. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास का एक सवाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिशर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ0 सं0 225

पंचम अध्याय

5. सामाजिक समरसता का वर्तमान परिदृश्य एवं रैदास की प्रासंगिकता

5.1 सामाजिक समरसता का वर्तमान परिदृश्य

5.2 रैदास की वर्तमान प्रासंगिकता

पंचम अध्याय
सामाजिक समरसता का वर्तमान परिदृश्य एवं रैदास की प्रासंगिकता

5.1 सामाजिक समरसता का वर्तमान परिदृश्य

जिस देश में सामाजिक समरसता होती है वह देश बहुत ही तेजी से विकास करता है। समाजिक समरसता से समाज के लोगों में एकजुटता आती है और सभी जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग के लोग मिलजुलकर एक साथ रहते हैं। सामाजिक समरसता से समाज के लोगों में एक दूसरे के प्रति परस्पर प्रेम की भावना जाग्रत होती है।

देखा जाए तो हम सभी लोग एक दूसरे पर निर्भर हैं निम्न वर्ग के लोग जो निम्न जाति से हैं जो गरीब हैं। हमें उनके साथ किसी भी तरह का छुआ–छूत जैसा व्यवहार या उनका शोषण नहीं करना चाहिए क्योंकि इस तरह के व्यवहार की वजह से निम्न वर्ग के लोगों की स्थिति काफी खराब हो जाती है और लगातार बिगड़ती जाती है। इसलिए हमें उन लोगों के साथ इस तरह का व्यवहार नहीं करना चाहिए आखिर वह भी तो इन्सान है। उन्हें भी आंगे बढ़ने का हक है। वह भी हमारे समाज का ही हिस्सा हैं तथा वह हमारे लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

हमारे घर में बहुत सारी ऐसी वस्तुएं होती हैं जिनका निर्माण निम्न वर्ग के लोग करते है। कृषि व्यवस्था को ही ले लीजिए हमारी कृषि व्यवस्था निम्न वर्ग पर आधारित है। दूसरे शब्दों में कहे तो हमारी कृषि व्यवस्था का आधार निम्न वर्ग के लोग है। यदि देखा जाए तो हमारा देश कृषि पर ही आधारित है यदि देश में से कृषि को निकाल दिया जाए तो देश का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। दूसरे शब्दों में यदि निम्न वर्ग कृषि करना बंद कर दे तो देश का अंत हो जाएगा।

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का जो मेरूदंड होता है वह निम्न वर्ग ही होता है। फिर भी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आधार पर उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है।

फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन, अमेरिका जैसे विकसित देशो में जो औधोगिक क्रांति और विकास हुआ है वह इसी कारण हुआ है कि वहॉ पर निम्न वर्ग और उच्च वर्ग में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं है इसलिए वह देश विकसित देश बन गए और भारत जैसे देश भेदभाव के कारण विकासशील ही रह गए।

सामाजिक समरसता की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि वर्तमान समय में समाज बंटकर वर्गों में विभक्त हो रहा है और प्रत्येक वर्ग अकेले उन्नति की सोच रहा है। ऐसे में देश की उन्नति होना सम्भव नहीं है। देश को प्रगति के पथ पर ले जाने के लिए सभी वर्गों को एकजुट होकर काम करना पड़ेगा। देश का जो पिछड़ा वर्ग है, अक्षम है और अशक्त है उसे आगे लाना होगा और उसमें सामर्थ्य पैदा करना होगा। समाज का एक–एक वर्ग जब अपना दायित्व निभाने के लिए खड़ा हो जाएगा तब देश का कल्याण एवं विकास अवश्य ही हो उठेगा।

जरूरत है कि समाज के हम सभी घटक स्वयं एक दूसरे के साथ मिलकर एक दूसरे के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करके, समाज में सामाजिक समरसता स्थापित करें। कुछ मायने में तो वर्ग–भेद और छूआ–छूत पूर्णतः मिट गए हैं। जैसे सिनेमाघर में हम साथ–साथ बैठकर फिल्में देखते है। वहां यह कोई नहीं देखता है कि मेरे आस–पास किस जाति के लोग बैठे हैं और पुस्तकालयों में भी लोग एक साथ बैठते हैं वहां पर भी कोई यह नहीं देखता है कि मेरे पास किस जाति के लोग बैठें हैं। इसी तरह होटल, रेस्टोरेंट, टी–स्टॉल आदि पर भी एक–दूसरे के जूठे बर्तनों का हम उपयोग करते है। अगर हम यातायात के साधनों की बात करे तो बस, ट्रेन, मेट्रो, ऑटो रिक्शा आदि में भी सभी जाति के लोग एक साथ सफर करते है वहां पर भी कोई एक दूसरे की जाति नहीं देखता है। लेकिन जब हम अपने घरों में होते हैं तो वहाँ पर हमें ऐसे अवसर देखने को नहीं मिलते हैं, वहाँ पर एक ग्लास पानी पिलाने से पहले अतिथि की जाति पूछ ली जाती है फिर जाति के आधार पर उसकी खातिरदारी की जाति है।

उत्सव हमें एक साथ मिलकर मनाने चाहिए परंतु उत्सव के समय भी हम लोग एक दूसरे के साथ भेदभाव करते है। पूरा देश इस भेद–भाव से ग्रसित है और

एक आक्रोशपूर्ण जीवन जी रहा है। ऐसे में जरूरत है, आपस की कटुता को भुलाने की और परस्पर मेलजोल से समाज को विकसित करने की।

सदियों से तथाकथित सवर्णों द्वारा इस कमजोर वर्ग को शोषित किया जाता रहा है लेकिन आज के समय में ऐसा नहीं चल सकता। अब हमें अपने उपेक्षित बंधुओं को ऊंचा उठाना होगा और उनको साथ लेकर ही हम उन्नति का सफर तय कर सकते हैं। इसके लिए हमें थोड़े कष्ट झेलने पड़ सकते हैं, हमें गाली सुननी पड़ सकती है परंतु इतना तो हम कर ही सकते है। सदियों से ये बन्धु उपेक्षा सहते आ रहे हैं इसिलए अब हमें इनके उत्थान के लिए कुछ करना चाहिए। सबसे पहले तो हमें इनके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए और इनके प्रति सद्भावना रखनी चाहिए।

तत्पश्चात् कुछ कार्य तो हम बहुत ही सरलता से कर सकते है, जैसे गरीब, कमजोर, पिछड़े वर्ग के बच्चों को पढ़ा सकते है हमारे अपने बच्चे उनके बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा दे सकते है। केवल 'चलो पढ़ायें कुछ कर दिखाएं', नारे लगाने से हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार किसी परिचित चिकित्सक द्वारा सप्ताह में किसी एक दिन उनके स्वास्थ्य का निःशुल्क परीक्षण करवा सकते हैं। हरिजनों की बस्ती में जाकर हम सफाई करके उन्हें स्वतः सफाई रखने को प्रेरित कर सकते हैं। महिलाओं को प्रेरित कर उनके द्वारा परिवार के पुरूषों की नशेबाजी पर नियंत्रण करवा सकते हैं साथ ही उनसे रिश्तेदारी भी जोड़ सकते है।

ऐसे ही कई प्रकार के कार्य हम कर सकते हैं और समाज के इस पिछड़े–कमजोर वर्ग को अपने बराबरी में लाने के लिए प्रयत्न कर सकते हैं। इस प्रकार देश का संपूर्ण विकास कर पाने में हम समर्थ हो सकेंगे।

हम प्रकृति से भी सामाजिक समरसता की शिक्षा ले सकते है। सूरज की किरणें अमीर और गरीब निम्न वर्ग और उच्च वर्ग सभी पर एक समान पड़ती हैं। हवा अमीर और गरीब निम्न वर्ग और उच्च वर्ग सभी के लिए चलती है। पानी सभी के लिए एक समान है ऐसा नहीं है कि अमीर और उच्च वर्ग के लिए मीठा पानी हो तथा गरीब और निम्न वर्ग के लिए खाड़ा पानी हो। इसी प्रकार अग्नि का भी जो

ताप अमीर और उच्च वर्ग के घर होता है वही ताप गरीब और निम्न वर्ग के घर भी होता है ऐसा नहीं है कि अमीर और उच्च वर्ग के यहां अलग अग्नि होती है। सब्जी सभी लोगों के लिए एक समान होती है ऐसा नहीं है कि अमीर और उच्च वर्ग के लिए मीठे फल और स्वादिष्ट सब्जी उगती है और गरीब, निम्न वर्ग के लिए कड़वे फल और बेस्वाद सब्जी उगती है, जब प्रकृति हमारे साथ भेदभाव नहीं करती है तो हम क्यों एक दूसरे के साथ भेदभाव करें ?

5.2 रैदास की वर्तमान प्रासंगिकता

आज के समय में व्यक्ति के लिए जीवन से अधिक जीवन संबंधी सुख–सुविधाओं का महत्व बढ़ गया है। मानवीय संबंध, भाई–बहन, माता–पिता, चाचा–ताऊ, मामा–मामी, बुआ–फूफा, दादा–दादी, नाना–नानी आदि के रिश्तो में भी दरार आ गयी है। मीडिया में आए दिन धोखाधड़ी, विश्वासघात, अत्याचार, हत्या, भ्रष्टाचार, शोषण तथा बलात्कार जैसी खबरे सुनकर रूह कांप जाती है। मानव जीवन में बाहरी दिखावे और तड़क–भड़क के कारण मनुष्य भीतर से खोखला और खाली होता जा रहा है। सब पूँजी और ऐश ओ आराम के पीछे पागल हो रहे हैं।

दिन–प्रतिदिन बढ़ते अपराध आज सामाजिक उत्पीड़न का कारण बने हुए है। सुरक्षित उच्च पदों पर बैठे लोग अधिक भ्रष्टाचारी हो गए हैं। मानवता भाईचारे तथा आदर्श की बात अब खोखली सी लगने लगी है। ऐसे समय में हमें जरूरत है **रैदास** के काव्य का अध्ययन करने की क्योंकि उन्होंने एक अद्‌भुत **बेगमपुरा** राज्य की कल्पना की है। जहाँ किसी भी प्रकार की कमी नहीं हैः–

''बेगमपुरा शहर को नाउं, दूखू अन्दोहु नहीं तिहि ठांउ।

ना तसवीस खिराजु न मालु, खउफ न खाता न तरसु जवालु।।

अब मोहिं खूब वतन गई पाई, ऊँहा खैरि सदा मेरी भाई।।

काइमु दाइमु, सदा पातिसाही, दोम न सेम एक सौ आही।

आपादानु सदा मसहूर, ऊँहां गनी बसहि मासूर।।

तिउ तिउ सैल करैहि जिउ भावै, महरम महल न कौ अटकावै।

कहि रैदास खलास चमारा, जो हम सहरी सु मीतु, हमारा।।''[1]

'बेगमपुरा' एक शहर है यह आज के देश की तरह नहीं है आज हमारा देश अन्य शहर और अनन्य गाँवों में विभाजित है। रैदास के बेगमपुरा शहर में किसी भी

प्रकार का दुःख नहीं है। जबकि हमारे देश में आज चारों तरफ दुःख ही दुःख फैला पड़ा है। रैदास के **'बेगमपुरा'** में किसी को भी किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं है जबकि आज हर एक मनुष्य किसी–न–किसी कष्ट से पीड़ित हैं। **बेगमपुरा** शहर में किसी भी प्रकार की चिंता नहीं है। जबकि आज मनुष्य अनेक चिंताओं से ग्रसित है। **बेगमपुरा** में किसी को भी अपने समान पर कोई टैक्स या कर नहीं देना पड़ता है, जिस प्रकार भारत देश में रहने के लिए हम सभी भारतीयों को भूमिकर, बिजलीकर, पानीकर, और आमदनीकर आदि देना पड़ता है। यहाँ तक कि टोल–टैक्स भी देना पड़ता है और तो और अच्छी शिक्षा के लिए भी हम सभी को कर देना पड़ता है। इन सभी के अतिरिक्त और जितने भी कर देने पड़ते हैं। उन सभी करों से मुक्त शहर रैदास का बेगमपुरा है। **'बेगमपुरा'** में किसी को भी किसी भी प्रकार का भय नहीं है जबकि आज हर मनुष्य को चोरी, लूट–पाट, कत्ल आदि का भय है और स्त्रियों को तो इन सबके साथ छेड़छाड़, बलात्कार आदि का भी भय है। रैदास के **'बेगमपुरा'** में कोई गलती हो जाए तो उसे सुधार लेते है या माफी मांग लेते है। जबकि आज अधिकतर मनुष्य गलती पर गलती करते हैं और उसे सुधारना तो दूर की बात है माफी तक नहीं मांगते है।

'बेगमपुरा' में किसी को भी किसी भी प्रकार का अभाव नहीं है जबकि जबकि आज के समय में किसी के पास घर नहीं है तो किसी के पास रोजगार नहीं है यही नहीं किसी के पास तो दो जून की भर–पेट रोटी तक नहीं है। इन्हीं अभावों की वजह से आज हर एक मनुष्य दुःखी है जबकि रैदास के 'बेगमपुरा' में किसी को कोई अभाव न होने की वजह से सभी लोग प्रसन्न है। रैदास कहते है कि अब मुझे रहने के लिए बहुत ही सुन्दर स्थान मिल गया है। यहाँ रहने वाले सभी लोग मेरे भाई के समान है अर्थात सभी के अन्दर भाईचारा है जबकि आज के समय में संपत्ति के लिए भाई–भाई की और बेटा–बाप की हत्या कर देता है।

'बेगुमपुरा' में कोई भी व्यक्ति पहले, दूसरे और तीसरे स्तर का नहीं है यानी न कोई छोटा है न कोई बड़ा बल्कि सभी एक समान है, अर्थात सब बराबर हैं। यहां किसी को भी लिंग, जाति, वर्ण, वर्ग, स्थान, भाषा, वर्ग, नस्ल, धर्म आदि के आधार पर अपमानित या समानित नहीं किया जाता है और न ही किसी भी प्रकार

का भेदभाव किया जाता है। यहाँ पर सभी के साथ एक समान व्यवहार किया जाता है जबकि आज के समय में उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग इन तीनों वर्गों में देश विभाजित है साथ ही एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को लिंग, जाति, वर्ण, वर्ग, स्थान, भाषा, वर्ग, नस्ल और धर्म आदि के आधार पर अपमानित और सम्मानित करता है और इसी आधार पर भेदभाव करता है। रैदास के 'बेगमपुरा' में मनुष्य की आजीविका मूलतः श्रम या कर्म प्रधान है इस श्रम प्रधानता के कारण यहाँ का वातावरण भी संतुलित रहता है अर्थात इस शहर में किसी भी प्रकार का प्रदूषण नहीं है। आज के समय में अनेक तरह के प्रदूषण देखने को मिल रहे हैं। इसमें वायुप्रदूषण, जलप्रदूषण, मृदाप्रदूषण, और ध्वनिप्रदूषण आदि प्रमुख है। रैदास के 'बेगमपुरा' में व्यक्ति जहाँ चाहे वहाँ जाने के लिए स्वतंत्र है। किसी को भी घूमने के लिए कोई रोक–टोक नहीं है कोई भी कहीं भी घूम सकता है और रह सकता है। जबकि आज के समय में एक देश से दूसरे देश में जाने और रहने के लिए वीजा और पासपोर्ट की आवश्यका पड़ती है। अर्थात् दूसरे देश में जाना और बसना आसान नहीं है।

रैदास का काव्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना की आज से कई वर्ष पूर्व था। सामाजिक सौहार्द और भाईचारे की प्रतीक उनकी रचनाएं आज भी प्रेरणादायक हैं और जात–पात, ऊँच–नीच की भावना को दूर करने का संदेश देती है। रैदास ने मीरा को ऐसे समय में अपनी शिष्य बनाया जब लोग स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखते थे। उस समय महिलाओं को कोई अधिकार नहीं था और किसी भी प्रकार की आजादी नहीं थी, रैदास ने मीरा को अपना शिष्य बनाकर यह साबित कर दिया कि वह स्त्रियों का मान सम्मान करते थे। अतः वह स्त्री–पुरुष, हिन्दू–मुस्लिम सभी ब्राह्मण–शूद्र, सभी को एकसमान मानते है। वह कहते हैः–

" 'रविदास' उपजउ सभी इक नूर ते, ब्राह्मण मुल्ला सेख।

सभ को करता एक है, सभ कुं एक ही पेख।।"[2]

आज परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि मनुष्य ही मनुष्य को नीचा दिखाने पर तुला है। कोई यदि आर्थिक रूप से संपन्न है तो वह गरीबों का शोषण करता है और

सवर्ण जातियाँ दलितों का। रैदास ने इन सब से ऊपर उठ कर मानवता का संदेश दिया है। डॉ प्रवीण कांवले इस सन्दर्भ में कहते हैः—**''संत रविदास जी ने इससे भी ऊपर उठकर मानवता का एक भव्य स्वप्न देखा था। लोकतांत्रिक समाजवाद, स्त्री जाति का सम्मान, मानव जन्म दुर्लभ, मानव सेवा, मानव'—प्रेम, श्रमपूंजी, कम—श्रेष्ठता मंदिर—मस्जिद एकता, हिन्दू—मुस्लिम, एकता, पराधीनता पाप, लंगर प्रथर आदि मानवता के ऐसे पक्ष हैं जो काव्य से परे निकल जाते हैं। आज की गणतांत्रिक समाज—व्यवस्था में भी संत रविदास के ये विचार हमारे लिए मार्ग दर्शक बन सकते हैं, अतः संत रविदास जी के काव्य से हम आज भी सामाजिक व्यवस्था को सुधारने की प्रेरणा ले सकते है।''**[3]

डॉ. सुभाष चन्द्र के शब्दों मेंः—**''जाति के आधार पर मनुष्य—मनुष्य में भेदभाव करने को संत रविदास ने मनुष्यता का अपमान समझा। उनका मानना था कि सभी मनुष्य को एक ही भगवान ने बनाया है, सबको बनाने वाला एक ही ईश्वर है, वह सब में समान रूप से मौजूद है। उसी से सबका विस्तार हुआ है, इसिलए जो वर्ण—अवर्ण, ऊँच—नीच पर विचार करते है, वे मूर्ख हैं।''**[4]

आज के समय में संविधान में लिखित प्रावधान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को समानता का अधिकार प्राप्त है परंतु यह व्यवहार में इतना विद्यमान नहीं है। समाज का एक बड़ा वर्ग आज भी छुआ—छूत, अस्पृश्यता और भेदभाव का शिकार है। वर्तमान में हो रहे साम्प्रदायिक और जातिगत हिंसा इस बात का स्पष्ट और ठोस प्रमाण है। जातिगत भेदभाव की भावना लोगों के अंतर्मन में गहरे पैठ गयी है। कर्म नहीं बल्कि जाति ही व्यक्ति की पहचान बन गई है। हम दिन प्रतिदिन यह सुनते रहते है, और शर्मा जी कैसे हो? और ठाकुर साहब क्या हाल—चाल है, अरे वर्मा जी कैसे हैं आप? और तो और लोग नाम पूछने के बाद पूरा नाम पूछते है अर्थात उपनाम ताकि जाति का पता चल जाए। जाति मनुष्य को अच्छा या बुरा नहीं बनाती है बल्कि उसके गुण या कर्म से उसको अच्छा या बुरा बनाते है। जातिवाद का रोग बसको पीड़ा देता है। जब तक जातिगत—भेदभाव की भावना लोगों के मन मस्तिष्क से निकल नहीं जाती तब तक उनमें एकता की भावना नहीं आ सकती। रैदास का काव्य लोगों को जातिवाद से ऊपर उठकर मानवता का पाठ पढ़ाता है

उनका काव्य हमें विश्वबन्धुत्व और भाईचारे का संदेश देता है। उनके संदेश पर चलकर व्यक्ति मानवीयता को सर्वोपरि रख कर सबके साथ सद् व्यवहार करता है।

रैदास की धारणा थी कि जातिगत भेदभाव, एक दूसरे के धर्म से घृणा और अस्पृश्यता, मानवता और देश के विकास में बाधक है। रैदास की वाणी जो की मानवीय मूल्यों का संदेश देती है उस पर आज गंभीरता से चिंतन मनन और उसकी सही व्याख्या करने की आवश्यकता है। साथ ही उस पर अमल करने की आवश्यकता है।

आचार्य रजनीश 'ओशो' ने रैदास के वचनों को 'आग का फूल' कहा है। वे लिखते हैंः– **''रैदास इसलिए भी स्मरणीय हैं कि रैदास ने वही कहा है जो बुद्ध ने कहा है। लेकिन बुद्ध की भाषा ज्ञान की भाषा है, रैदास की भाषा भक्त की भाषा है। प्रेम की भाषा है। शायद इसीलिए बुद्ध को तो उखाड़ा जा सकता है रैदास को नहीं उखाड़ा जा सकता । जिस की जड़ों को प्रेम से सींचा गया हो, उसे उखाड़ना असंभव है बुद्ध के साथ तर्क किया जा सका, बुद्ध के साथ विवाद किया जा सका, रैदास के साथ तर्क नहीं हो सका, विवाद नहीं हो सकता। रैदास को देखोगे तो या तो दिखाई पड़ेगा तो झुक जाओगे नहीं दिखाई पड़ेगी तो लोट जाओगे। प्रेम के सामने झुकने के सिवाय कोई उपाय नहीं है, क्योंकि प्रेम परमात्मा का प्रकटीकरण है, अवतरण है। बुद्ध की भाषा बहुत मजी हुई है, राजपुत्र की भाषा है, शब्द नपे–तुले हैं। शायद कोई व्यक्ति कभी इतने नपे–तुले शब्दों में नहीं बोलता, जैसा बुद्ध बोले हैं। लेकिन बुद्ध को भी तर्क का तूफान सहना पड़ा और बुद्ध की जड़े उखड़ गई। भारत से बुद्ध धर्म विलीन हो गया। रैदास ने बुद्ध की बाते ही की है, पुनः लेकिन भाषा बदल दी, नया रंग डाला। पात्र वही था बात वही थी, शराब वही थी, नयी नयी बोतल थी और रैदास को उखाड़ा नहीं जा सका।''**[5]

रैदास जिस आदर्श राज्य की बात करते हैं। वहां सभी को खाने के लिए भर पेट भोजन मिलता है अर्थात कोई भी भूखा नहीं रहता है तभी तो रैदास प्रसन्न रहते हैं।

''ऐसा चाहूँ राज मैं,
जहाँ मिले सबन को अन्न।
छोटे बड़े सभ सम बसैं,
'रैदास' रहैं प्रसन्न।''[6]

आज मनुष्य सम्पूर्ण विश्व में, प्राकृतिक संतुलन को नष्ट कर रहा है वह ऐसा अपने स्वार्थवश कर रहा है। मनुष्य का स्वार्थ मानव–मानव में भेद पैदा कर देता है यह भेद मनुष्य के अंदर ईर्ष्या की भावना पैदा करता है। मनुष्य के अंदर ईर्ष्या की भावना मनुष्य को विनाशकारी बना देती है। जिससे मनुष्य ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी नष्ट हो सकती है। मनुष्य की भावना विनाशकारी नहीं बल्कि सृजनात्मक होनी चाहिए, सृजनात्मक होने के लिए मनुष्य को संतुष्ट होना जरूरी है। संतुष्ट वही मनुष्य है जिसके पास खाने के लिए पर्याप्त अन्न है। इसी अन्न की बात रैदास के चिंतन में दिखती है जो मनुष्य और देश में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आज सम्पूर्ण विश्व अन्न की समस्या से परेशान है। यहां जो भी भूखा है वह चाह कर भी सृजनात्मक नहीं हो सकता है क्योंकि भूख उसे कुछ भी करने के लिए मजबूर कर देती है। यहीं से मनुष्य की भावना विनाशकारी हो जाती है, जिसके कारण मनुष्य की ऊर्जा गलत दिशा में कार्य करने लगती है। मनुष्य की ऊर्जा का उपयोग सृजनात्मक कार्यों में होना चाहिए तभी हम एक बेहतर मनुष्य बन सकेंगे और एक बेहतर भारत ही नहीं बल्कि एक बेहतर विश्व का निर्माण कर सकेंगे। रैदास का 'बेगमपुरा' ऐसा ही विश्व है। सावित्री शोभा ने इस संदर्भ में लिखा हैः–**''रविदास एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं। जहाँ ऊँच–नीच और दुःख दर्द नहीं हो, पूरा न्याय हो और सब एक दूसरे के मित्र हो। इसको वह 'बेगमपुरा' का नाम देते हैं।''**[7]

पो.जे.एच. सांसिया के शब्दों मेंः–**''जहाँ तक रैदास की वाणी में मानवीय प्रासंगिकता का प्रश्न है वह एक, दूसरे रूप में हमारे सामने आता है, धार्मिक मंच से धार्मिक स्वधीनता के प्रश्न को उठाकर रैदास जी को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुक्ति के प्रश्नों को भी उसके साथ जोड़ा था। इस प्रक्रिया में उन्होंने मानव–मात्र की समानता स्वतंत्रता और भाईचारे की बात उठाई थी और उसके**

लिए वैचारिक संघर्ष किया था। अतः उनकी बातें वर्तमान संदर्भ में और अधिक प्रासांगिक हो गई हैं।''[8]

रैदास का जन्म निम्न वर्ग के परिवार में हुआ था और उस समय तो निम्न वर्ग के लोगों की स्थिति बहुत ही दयनीय थी, लोग उन्हें हेय की दृष्टि से देखते थे ऐसी स्थिति में भी रैदास ने अपने आपको इस काबिल बनाया कि आज समाज को उनके व्यक्तित्व और उनके काव्य से सीख अर्थात शिक्षा लेने की आवश्यकता है। **आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद लिखते हैंः–''इनकी वाणी में निर्माणकारी तत्व जीवन की पवित्रता आचरण की शुद्धता, वासनाओं से मुक्ति, प्रभु से मिलन की तड़प, मानव प्रेम, उदारता, शील, क्षमा संतोष, साधुता, विनम्रता, विवेकशीलता आदि अनेक विशेषताएं है जो आज के इस वैज्ञानिक युग के भटके हुए इन्सान को प्रभावित करके उसे मानव से महामानव बनाने की क्षमता रखती है। जिन शाश्वत मूल्य को इन वाणियों में व्यक्त किया गया है वे प्रत्येक देश, समाज और काल के लिए अपनी विशेष उपयुक्तता रखती है।''**[9]

इसी प्रकार डॉ. श्यामसुंदर दास कहते हैंः–**''संत रविदास का साहित्य विशेष साधनापरक विचारों से ओत–प्रोत है और समाज को नई दिशा में मोड़ने के सफल प्रयास का एक सुंदर माध्यम सिद्ध हो चुका है। इस प्रकार यह किसी बड़े आंदोलन का साधनामत्र है, जो पूरे युग परिवेश को चिरंतन अपने आप में समेटते हुए आगे बढ़ा है। यह अपने युग की एक प्रगतिशील साहित्यक परंपरा है जो मानव–मात्र को युगानुरूप आचार–विचार के पालन की प्रेरणा देने में सक्षम है।''**[10]

आज के समय में भी हमें जातिगत भेद–भाव देखने को मिलता है सोचो यदि चमार मृत पशुओं को उठाना छोंड़ दे और भंगी साफ सफाई का काम छोड़ दे तो पूरे समाज में चारो तरफ गंदगी फैल जाएगी और गंदगी से अनेक बिमारियाँ फैल जाएगीं और बिमारियों से ग्रस्त होकर मनुष्य मरता चला जाएगा और एक दिन पूरा समाज समाप्त हो जाएगा। रैदास इस बात को भली–भाँति जानते थे इसलिए वे भेदभाव को नकारते हैं।

मीरा गौतम इस संदर्भ में कहती हैंः–**"वास्तव में संत रविदास का काव्य है, एक चर्मकार के प्रति समाज की हीन और उपेक्षित दृष्टि, घृणा और सामाजिक प्रताड़नाओं के बीच टकराव और भेदभाव को मिटाकर प्रेम और एकता का संदेश देकर आज भी अपनी प्रसांगिकता सिद्ध कर दी है।"**[11]

साथ ही बतौर नंदकिशोर सिद्धार्थ इसी संदर्भ में लिखते हैंः–**"संत रैदास सम्पूर्ण जीवन समतामूलक समाज की स्थापना के लिए संघर्ष करते रहे।"**[12]

रैदास ने अपने अनुभव से देह, मन, बुद्धि, हृदय की अनन्य वृत्तियों एवं भाव–दशाओं पर विजय पा ली थी और इसी अनुभव को उन्होंने अपने काव्य में उतार दिया जिसकी जरूरत कल भी थी और आज भी है। इस संदर्भ में डॉ. हुकुम सिंह लिखते हैंः–**"वे दूसरे के लिए अपितु उनके अपने जीवन में छनकर निकली हुई अनुभूति है। उनके नैतिक मूल्य से ओढ़े हुए लबादे नही, उनके जीवन के निष्कर्ष हैं। उनके काव्य में जो सामाजिक तत्व मिलते हैं, वे समग्र जन–जीवन को सोद्देश्य की ओर प्रेरित करने वाले है। उन्होंने जो भी चेतावनियाँ दी हैं, वे स्मरण के लिए सदैव कल्याणकारी है। कल भी थी और आज भी है।"**[13]

आज दिन–ब–दिन नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है गुरू– शिष्य संबधों में भी वह मधुरता नहीं रह गयी है जो वैदिक काल में थी। उस समय शिष्य अपने गुरू का बहुत आदर करते थे और उनके बताए गए मार्ग पर चलते थे परंतु आज बहुत से शिष्य अपने गुरू द्वारा बताए मार्ग पर चलना तो दूर की बात है, उनका आदर तक नहीं करते है। जबकि गुरू शिष्य का भविष्य बनाता है और शिष्य देश का अर्थात् देश का भविष्य बनाने और विकास करने में गुरू की अहम भूमिका होती है रैदास कहते हैः–

"काम क्रोध अहंकार निबारह,
तिस्ना तिआगहु संत जना।
कहे रविदास अब शीतल हुए,
जब लागो गुरू के चरना।"[14]

अंतर्जातीय विवाह

जातिगत भेदभाव खत्म न होने का एक कारण यह भी है कि आज भी लोग अंतर्जातीय विवाह नहीं करते है।

यदि एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों से वैवाहिक संबंध बना लें तो वह अपने रिश्तेदारों से नफरत नहीं कर पाएंगे और अगर यही क्रम लगातार चलता रहा और बड़ी कगार पर चलता रहा तो एक दिन ऐसा आऐगा जब जातिगत भेदभाव खत्म हो जाएगा क्योंकि उस समय सभी लोग एक दूसरे से जुड़ चुके होंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, डॉ0 एन, रैदास ग्रन्थावली, साहित्य संस्थान प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण, 2003, पृ0सं0 158
2. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास का एक सवाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिशर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ0 सं0 257
3. कांबले, डॉ0 प्रवीण, निर्गुण काल में सामाजिक चेतना और संत रविदास का योगदान, अमन प्रकाशन, कनपुर, संस्करण, 2013, पृ0 सं0, 274
4. चन्द्र, डॉ सुभाष, दलित मुक्ति की विरासत–संत कवि रविदास, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, संस्करण, 2020, पृ0 सं0, 46
5. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास का एक सवाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिशर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ0 सं0 94
6. वही, पृ0 सं0, 24
7. वही, पृ0 सं0, 156
8. वही, पृ0 सं0, 189
9. वही, पृ0 सं0, 253–254
10. वही, पृ0 सं0, 252
11. वही, पृ0 सं0, 189
12. वही, पृ0 सं0, 157
13. वही, पृ0 सं0, 351
14. वही, पृ0 सं0, 188

उपसंहार

उपसंहार

रैदास ने तत्कालीन परिस्थितियों में समाज को उचित दिशा देने के लिए धार्मिक अंधविश्वासों का विरोध करके समस्त मनुष्यों को भेदभाव भूलकर आपस में मिलजुलकर इस देश की उन्नति के लिए कार्य करने का उपदेश दिया। उनका यह उपदेश तत्त्कलीन परिस्थितियों में जितना आवश्यक था, आज भी उतना ही प्रासंगिक है। क्योंकि भौतिक दृष्टि से इतनी वैज्ञानिक उन्नति कर लेने के बावजूद भी धार्मिक–अंधविश्वास पूर्णतः नष्ट नहीं हो पाया हैं। आज भी मंदिर और मस्जिद को लेकर राम और खुदा के नाम पर सांम्प्रदायिक दंगे लगातार हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में रैदास के काव्य से सीख लेना आवश्यक है।

वास्तव में यदि हम सभी को वैश्विक स्तर पर आतंकवाद, भौतिकवादी कष्टों से छुटकारा, जाति–पाति के बंधनो से मुक्ति, हिन्दू–मुस्लिम बैरभाव, असहिष्णुता, ऊँच–नीच की भावना का त्याग, बाह्य आडम्बरों से छुटकारा पाना है तो निःसन्देह हम सभी को उनके विचारों को आत्मसात करते हुए, उस पर अपना जीवन जीना होगा।

किसी समाज की उन्नति उसकी शिक्षा पर तथा उसका अस्तित्व उसके साहित्य पर निर्भर करता है। साहित्य समाज को सचेत और सक्रिय रखता है तथा उसे प्रेरणा और दिशा भी देता है। साहित्य से समाज को ऊर्जा और ताकत मिलती है। साहित्य के अभाव में किसी भी समाज की पहचान और अस्तित्व संकटग्रस्त रहता है। बौद्धधर्म का ज्वलंत उदाहरण हमारे सामने है। भारत से बौद्धधर्म के उच्छिन होने का प्रमुख कारण यही था कि उसका साहित्य नष्ट हो गया था इसलिए जितना अधिक और सार्थक साहित्य होगा उतना ही आधिक समाज का विकास होगा।

आज के समय में हर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से प्रतिस्पर्धा कर रहा है यहाँ तक कि लोग अपनों से भी प्रतिस्पर्धा करने में पीछे नही हटते हैं। आज के प्रतिस्पर्धा भरे दौर में हर इन्सान भविष्य में एक से बड़कर एक सुख–सुविधा प्राप्त

करना चाहता है और इसी कारण वह अपने वर्तमान जीवन को भलि भांति व्यतीत नहीं कर रहा है। इन प्रतिस्पर्धा की चिंताओ से मुक्त होने के लिए रैदास कर्मफल–दायक सिद्धांत का उदाहरण देते हैः–

''रविदास मनुषकर धरम है करम करहि दिन रात।

करमनहिं फल पावना नहीं काहु के साथ।''[1]

आज के समय में लोग प्रतिस्पर्धा के चलते स्वयं को और अपने आपसी संबंधी को भी पछाड़ते चलते है और जब उस कर्म का फल प्राप्त नही होता तब व्यक्ति अकेला महसूस करता है और फिर वह अपने जीवन और अपने लक्ष्य के लिए उदासीन हो जाता है।

आज छात्र छात्राएँ विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रतियोगिताओं की तैयारी करते हैं और जब उन्हें लक्ष्य प्राप्त नहीं होता है, तब वह कुण्ठित मानसिकता का शिकार हो जाते है या आत्महत्या जैसे रास्ते को चुनते हैं। इसलिए आजकल शिक्षा संस्थानों में योग की शिक्षा दी जा रही है और वही रविदास नें योगी होने का महत्व और उनके गुणों का बखान बहुत पहले ही कर दिया थाः–

''सुख–दुख हानि–लाभ कउजउ समझहि इक समान।

रविदास तिन्हहि जानिए जोगी पुरुष सुजान।''[2]

आज के समय में आए दिन लोग सड़को, विश्वविद्यालयों, सस्थाओं आदि स्थानों पर अपने अधिकारो, तन्खाह, भ्रष्टाचार, आदि के खिलाफ आंदोलन करते रहते है।

कोई भी लेखक या कवि अपनी रचना में तत्कालीन समस्याओं का वर्णन करता है तथा उन समस्याओं का समाधान भी सुझाता है इन्हीं सुझावों के आधार पर किसी रचना की प्रासंगिकता या अप्रासंगिकता निर्धारित होती है साथ ही लेखक या कवि की भी। इस संदर्भ में जब हम रैदास के काव्य का अध्ययन करते है तब हम यह पाते है कि उनके द्वारा बताई गई समस्याएं आज भी वैसी है जैसा रैदास

ने उनका वर्णन किया है। हाँ यह जरूर है कि वे समस्याएँ ज्यों कि त्यों नहीं है, बल्कि अब थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ है। लोग इतना मुखर होकर विरोध नहीं करते हैं बल्कि अब समस्याओं पर राजनीति होती है। यथा– वर्चस्ववादी व्यवस्था धर्म के विभिन्न पाखंड, जात–पात' के बंधन, मनुष्यता का हनन, साम्प्रदायिक वैमनस्य, गरीबी, शोषण आदि सभी समस्याएं आज भी हैं और रैदास के समय में थी इसी कारण रैदास ने '**बेगमपुरा**' शहर की कल्पना की है जहां सभी को भर पेट अन्न मिलता है और किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं है सभी लोग एक समान हैं तथा किसी भी प्रकार का दुःख नही हैं सभी लोग प्रसन्न है सब एक–दूसरे के मित्र हैं, समाज में न्यायपूर्ण व्यवस्था है इसलिए हम कह सकते हैं की रैदास की प्रासंगिकता आज भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास का एक सवाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिशर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018, पृ0 सं0 233

2. वही, पृ0 सं0 234

ग्रंथ सूची

ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

1. चन्द्र, डॉ0 सुभाष, दलित मुक्ति की विरासत–संत रविदास, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, संस्करण, 2012

2. दीपांकर, आशीष कुमार, कवि रैदास एक सबाल्टर्न चिंतन, अनुसंधान पब्लिशर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2018

3. सिंह, डॉ0 एन, रैदास ग्रन्थावली, साहित्य संस्थान प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण, 2003

4. सिंह, डॉ0 एन, संत शिरोमणि रैदास : वाणी और विचार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2013

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आचार्य नंदकिशोर, सभ्यता का विकल्प : गांधी दृष्टि का पुनराविष्कार, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, संस्करण, 1995

2. कांबले, डॉ0 प्रवीण, निर्गुण काव्य में सामाजिक चेतना और संत रविदास का योगदान, अमन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण, 2013

3. तिवारी, अजय, तुलसीदास एक पुनर्मूल्यांकन, आधार प्रकाशन, हरियाणा, प्रथम संस्करण, 2006

4. तिवारी, पारसनाथ, कबीर ग्रन्थावली, हिन्दी परिषद, प्रयाग, विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 1961

5. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीताप्रेष, गोरखपुर, 100वॉ–पुर्नमुद्रण

6. दास, श्यामसुन्दर, कबीर ग्रन्थावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2011

7. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1973

8. नवल, नंद किशोर, सूरदास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013

9. प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994

10. मिश्र, शिवकुमार, भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य,, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2010

11. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011

12. शुक्ल, रामचन्द्र, भ्रमरगीत सार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2011

13. सिंह, इन्द्रराज, संत रविदास, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, संस्करण, 1986

14. त्रिपाठी, विश्वनाथ, लोकवादी तुलसीदास, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2007

15. त्रिवेदी, डॉ0 हरिहर, डॉ0 मण्डन, त्रिवेदी, कबीरः जीवन वृत्त एवं व्यक्तित्व, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2001

सहायक ग्रंथ

1. दलित साहित्य के अग्रदूत : गुरू रविदास – डॉ. चमनलाल, आधार प्रकाशन, पंचकूला संस्करण–1998

2. सन्त रैदास : एक विश्लेषण – कंवल भारती, बोधिसत्त्व प्रकाशन, द्वितीय संस्करण–2000गृ

3. रैदास ग्रंथावली – डॉ. एन. सिंह, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, संस्करण–2003

4. हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा–माताप्रसाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण–1993

5. सन्त रैदास और उनका काव्य–संपादक – रामानंद शास्त्री और वीरेंन्द्र पांडेय

6. सन्त सुधाकर – संपादक– वियोगी हरि।

7. सन्त काव्य– परशुराम चतुर्वेदी।

8. सन्त रैदास का निर्वर्ण संप्रदाय – डॉ. धर्मवीर

9. गुरू रविदास – डॉ. धर्मवीर, समता प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–1999

10. दलित चतिन का विकास : अभिशाप चिंतन से इतिास चिंतन की ओर – डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2012

11. दलित विमर्श की भूमिका – कंवल भारती, साहित्य उपक्रम अर्पित प्रिंटोग्राफर्स, दिल्ली, संस्करण–2012

12. दलित साहित्य की दशा और दिशा– माता प्रसाद, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली संस्करण–2003

13. निर्गुण काव्य में सामाजिक चेतना और सन्त रविदास का योगदान– डॉ. प्रवीण कांवले, अमन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण–2013

14. परम्परा और प्रतिरोध – सदानंद साही, हिंदी अकादमी, दिल्ली, संस्करण–2011

15. सन्त कवि रैदास और उनकी सामाजिक चेतना – जगदीश चंद्र सितारा, भारतीय दलित साहितय अकादमी, संस्करण–2003

16. सन्त रैदास वाणी और विचार – डॉ. रमेशचंद्र मिश्र सन्त साहित्य संस्थान, दिल्ली, संस्करण–2002

17. सन्त साहितय विश्वकोश – रमेशचंद्र मिश्र

18. रैदास वानी – संपादक – डॉ. शुकदेव सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन संस्करण–2003

19. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र – ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरा संस्करण–2017

20. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र – शरण कुमार लिंबाले, अनुवादक– रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, दूसरा प्रकाशन – 2005

21. दलित कविता का संघर्ष – कंवल भारती, स्वराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2012

22. दलित साहित्य का समाजशास्त्र – हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा संस्करण–2010

23. सन्त रैदास – डॉ. योगेन्द्र सिंह – अक्षर प्रकाशन – प्रथम संस्करण 1972

24. सन्त काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता – डॉ. रवीन्द्र कुमार सिंह, वाणी प्रकाशन, संस्करण–1994

25. दलित साहित्य की अवधारणा – कँवल भारती, बोधिसत्व प्रकाशन, जनवरी–2006

26. दलित साहित्य बुनियादी सरोकार – कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2009

वेबसाइट

1- http://www.allsubjectjournal.com/archives/2017/vol4/issue5/4-7-169

2- http://ignited.in/I/A/89553

3- http://www.ijrra.net/Vol2issue1/IJRRA-02-01-32.pdf

4- http://www.allsubjectjournal.com